प्रमुख सम्पादक :
मुहम्मद यूसुफ टेंग

सम्पादक
रमेश मेहता

इस अंक में
जम्मू-कश्मीर के लोक साहित्य से सम्बन्धित विशेष सामग्री...

ललितकला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी, जम्मू-कश्मीर, जम्मू.

शीराज़ा

हिन्दी

जून 1974
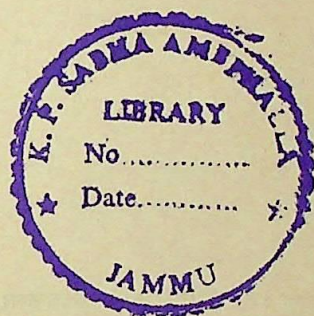
प्रमुख सम्पादक :

मुहम्मद यूसुफ टेंग

सम्पादक :

रमेश मेहता

ललितकला संस्कृति तथा साहित्य अकादमी, जम्मू ।

वर्ष : 10 | जून 1974 | अंक : 1

सम्पादकीय पत्र व्यवहार
रमेश मेहता
सम्पादक
शीराज़ा हिन्दी
ललितकला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी,
नहर मार्ग, जम्मू

टेलीफोन 5040

सचिव द्वारा जम्मू व कश्मीर ललितकला, संस्कृति तथा
साहित्य अकादमी, जम्मू-कश्मीर के लिए प्रकाशित
तथा डोगरा प्रिंटिंग प्रेस, कच्ची छावनी, जम्मू में मुद्रित ।

वार्षिक : आठ रुपये
प्रत्यंक : दो रुपये

शीराज़ा हिन्दी

वर्ष : 10 जून 1974 अंक : 1

अनुक्रमणिका

कविताएं

स्थायी स्तम्भ

अपनी बात

लोक साहित्य जन-जीवन का दर्पण होता है। आदिम युग से संसार के प्रत्येक प्रदेश में जन-सामान्य ने भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने के सरल किन्तु कलात्मक माध्यम खोज निकाले।

लखनपुर के पास रावी के उत्तरी किनारे से लेकर सुदूर उत्तर में लद्दाख तक फैली उपत्यकाओं में फैला हुआ जम्मू-कश्मीर प्रदेश विभिन्न सांस्कृतिक इकाइयों का संधिस्थल है। विभिन्न मत-मतान्तरों का पोषक यह प्रदेश किसी भी मत विशेष को किसी अन्य मत से न्यून अथवा उच्च नहीं मानता है। समानता के आधार पर विकसित यहां की संस्कृति बहुरंगी है जिस में प्रत्येक धर्म, सम्प्रदाय या मत का समन्वय मिलता है। इस प्रदेश की एक अन्य विशेषता यह है कि इसका अधिकांश भाग पर्वतीय है। पर्वतीय प्रदेश की सुन्दर नैसर्गिक छटा का प्रभाव जन-जीवन पर गम्भीर एवं व्यापक होता है। संगीत तथा नृत्य के प्रति भी पर्वत-प्रदेश के निवासियों का सहज झुकाव होता है।
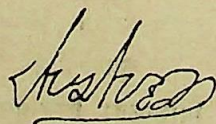
इस परिवर्तनशील जगत में मनुष्य के जन्म से लेकर मरण तक अनेक सस्कारों का नियमन किया गया है अतः इन संस्कारों की लोक साहित्य में विशेष भूमिका रही है। डोगरी, कश्मीरी, पुन्छी, भद्रवाही, गोजरी, बल्ती तथा लद्दाखी—सभी भाषाओं के लोक साहित्य में इन संस्कारों को लेकर अनेक गीतों, कथाओं तथा गाथाओं की रचना हुई है। इन्हीं अवसरों से सम्बन्धित विशेष प्रकार के नृत्यों का भी प्रचलन है।

कृषक जीवन की भूमिका सम्पूर्ण विश्व के लोक साहित्य में विशिष्टता लिए हुए है। जम्मू-कश्मीर के लोकगीतों, लोक कथाओं, लोक गाथाओं या लोकोक्तिओं का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि इस प्रदेश के कृषक ने अपनी दशा को लोक साहित्य के माध्यम से सशक्त एवं प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया ।

सामन्तवादी युग में जनता की दशा का वर्णन करने तथा सामन्तों को उनकी गलतियों के प्रति सचेत करने में लोक गीतों, कथाओं, लोकोक्तियों और लोक नाट्यों की विशेष भूमिका रही है। कश्मीर का लोक नाट्य बांड पाथर वहां की जनता में आज भी उसी भांति लोकप्रिय है जैसा कि वह सामन्तवादी युग में था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से आज तक लोक साहित्य के संरक्षण में राज्य सरकार ने विशेष रुचि दर्शायी है। राज्य की ललितकला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी ने लोक साहित्य की समाप्त होती हुई मौखिक परम्परा को देखते हुए चिन्ताकुल होकर लोक साहित्य को पूर्णतया नष्ट होने से बचाने के लिए डोगरी, कश्मीरी तथा लद्दाखी लोक गीतों, कथाओं तथा गाथाओं को एकत्रित करके लिपिबद्ध करवाया है तथा उनका प्रकाशन भी किया है। लोक साहित्य एक विकासशील प्रक्रिया है अतः नित नए लोक गीत तथा कथाएं आदि सामने आते हैं जिनके संरक्षण के लिए अकादमी सजग रहती है। अकादमी जम्मू-कश्मीर के लोक साहित्य को हिन्दी, उर्दू पंजाबी आदि भाषाओं के माध्यम से समूचे देश के सन्मुख प्रस्तुत करने के प्रयास भी कर रही है जिस से कि इन भाषाओं को न जानने वाले लोग भी इस भू-भाग के लोक साहित्य की गरिमा से परिचित हो सकें तथा उसका आस्वादन कर सकें।

प्रस्तुत अंक में जम्मू-कश्मीर के लोक साहित्य के कुछ एक पक्षों पर ही लेख प्रस्तुत किये जा रहे हैं क्योंकि लोक संस्कृति के अनेकविध रूपों को एक ही अंक में प्रस्तुत कर पाना बहुत ही कठिन है। 'शीराज़ा' का 'लोक मंच' इस प्रदेश की लोक संस्कृति के विभिन्न पक्ष उद्घाटित करता रहेगा, इस विश्वास के रहते मैं समझता हूं कि 'शीराज़ा' परिवार इस अंक में लोक संस्कृति पर सीमित सामग्री देखकर निराश नहीं होगा।

हरिकृष्ण कौल

※

कश्मीरी लोक नाट्यः बांड पथर

कश्मीरी लोक-नाट्य बांड 'पथर[1]' के नाम से जाना जाता है। बांड पथर अर्थात बांडों के द्वारा खेला जाने वाला पथर कश्मीर का पारम्परिक नाट्य रूप है। परन्तु आजकल बाड पथर के नाम पर जो कुछ बचा है उसे देख कर इस लोक नाट्य के मूल रूप की पहचान यदि असम्भव नहीं तो कठिन जरूर है। कश्मीरी में बांड शब्द का प्रयोग नटों की जाति के लिये होता है जिन के द्वारा ये लाक नाटक खेले जाते हैं। बहुत सम्भव है कि प्राचीन काल में यह जाति सारे कश्मीर में फैली हुई हो, किन्तु आजकल ये नट अनन्तनाग ज़िले के अकिनगाम गांव, श्रीनगर ज़िले के वाथोरा गांव और बारामूला ज़िले के बुमई गांव में ही अधिकतर रहते हैं। एक ही पथर को अलग-अलग गांव में रहने वाले नट अलग-अलग ढंग से खेलते हैं। परन्तु फिर भी कुछ तत्व ऐसे हैं जो सभी प्रकार के बांड पथरों में पाये जाते हैं। श्री मोती लाल क्यमू, जिन्होंने अपनी नाट्य कृति 'त्रुनोव' की भूमिका में बांड पथरों का अच्छा अध्ययन प्रस्तुत किया है, इस कश्मीरी लोक नाटक के निम्नलिखित तत्व मानते हैं—

१. मसखरापन या हास्य।

२. रंग चाल (MOVEMENTS)

३. गान।

४. शहनाई वादन तथा ताल और लय द्वारा नियमित गात्रविक्षेप (CHOREOGRAPHY)

---

1. इस शब्द का शुद्ध रूप 'पॅथर' है। हमें खेद है कि उपयुक्त 'टाइप' उपलब्ध न होने के कारण हमें इसे 'पथर' रूप में छापना पड़ रहा है।

५. व्यंग्य।

६. अभिनय।

७. बोलियां।

८. नृत्य।

९. दुआ-ए-खैर (आशीर्वाद और शुभ कामना)।

मसखरे प्रत्येक बांड पथर में हुआ करते हैं। किसी पथर में इन की संख्या कम और किसी में अधिक होती है। कभी ये दर्शकों से मज़ाक करते हैं। कभी ये पथर के अन्य पात्रों की नकल उतारते हैं। इनके सवादों और इनकी चेष्टाओं से हास्य की सृष्टि होती है। किन्तु मानना पड़ेगा कि इस हास्य का स्तर निम्न होता है। मसखरों के अभिनय में मूक अभिनय (MIME) और उछल-कूद के तत्व भी पाये जाते हैं। कभी-कभी इन का पहनावा देख कर ही हंसी आती है। किसी-किसी पथर में मसखरे सूत्रधार की भूमिका भी निभाते हैं। पथरों में स्त्रियों का अभिनय भी स्त्री वेशधारी पुरुष करते हैं।

शहनाई का (जिसे कश्मीरी में 'सुरनै' कहा जाता है) बांड पथर में महत्वपूर्ण स्थान होता है। शहनाई के साथ नक्कारा और ढोल भी बजाये जाते हैं। शहनाई पात्रों के प्रवेश, प्रस्थान या किसी विशेष अभिनय के समय बजाई जाती है। विभिन्न पथरों में शहनाई पर विभिन्न मुकाम (राग) पेश किये जाते ह।

प्रत्येक पथर के अन्त पर बांड राजा और प्रजा, अभिनेता और दर्शक, ग्रामीणों और नागरिकों—सभी के लिये दुआ मांगते हैं। बांडों की तरह दुआ मांगना कश्मीरी भाषा में मुहावरा भी बन गया है।

कुछ लोग बांड शब्द को व्युत्पत्ति संस्कृत भाण से मानते हैं। भाण रूपक के दस भेदों में से एक है और कहा जाता है कि कश्मीरी बांड पथर भाण नामक नाट्य रूप से ही विकसित हुआ है। किन्तु धनञ्जयकृत 'दशरूपक' में भाण के लक्षण यों बताये गये हैं—"भाण वह रूपक है जहां कोई अत्यधिक चतुर तथा बुद्धिमान (पण्डित) विट (एक कला पारंगत व्यक्ति) अपने द्वारा अनुभूत अथवा किसी दूसरे के द्वारा अनुभूत धूर्तचरित का वर्णन करे। यहां पर सम्बोधन उक्ति व प्रत्युक्ति का सन्निवेश आकाश भाषित से किया जाता है। यहां पर कोई दूसरा पात्र नहीं होता है......इस की कथा वस्तु कवि कल्पित होती है।"

भाण मूलतः एक-पात्रीय नाटक होता है और किभी भी बांड पथर में पात्रों

की संख्या छः सात से कम नहीं होती है । यहां भाण और बांड पथर में मौलिक भेद दृष्टिगोचर होता है । कहने की आवश्यकता नहीं कि ध्वनि साम्य के आधार पर ही बांड और भाण के सम्बन्ध की अटकल लगाई गई है।

बांड पथर का सीधा सादा अर्थ बांडों (नटों) द्वारा अनेक पात्रों का स्वांग है। बांडों द्वारा खेले जाने वाले पथर बहुत हैं जिन में कुछ प्रसिद्ध पथर ये हैं—

१. राजा पथर (इस में राजा का स्वांग भरा जाता है)।
२. बट पथर (इस में कश्मीरी पंडित की नकल उतारी जाती है)।
३. बातल पथर (इस के अधिकांश पात्र भंगी या बातल होते हैं)।
४. दरजअ पथर (इस में दरद राजाओं की बीवियों का मज़ाक उड़ाया जाता है)।
५. शिकार गाह (इस पथर में नट मुखौटे लगा कर विभिन्न पशुओं की भूमिका में आते है ।
६. गोसाति (गुसाईं) पथर (इस में साधुओं की नकल उतारी जाती है)।

ये सभी पथर-रूप खुले में खेले जाते हैं । अभिनेता दर्शकों के मध्य से उठ कर नाटक में सम्मिलित हो जाते हैं और जनता से सीधे सम्बोधित होते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई नट दर्शकों के मध्य से उठ कर अपनी भूमिका निभाता है तथा लौट कर दर्शकों के मध्य ही बैठ जाता है। इस प्रकार कश्मीरी लोक नाटक जन-सहयोग (AUDIENCE PARTICIPATION) का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

इन पंक्तियों के लेखक को कुछ समय पूर्व तीन बांड पथर, राजा पथर, दरजअ पथर और गोसोति पथर देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। राज पथर में सर्वप्रथम शहनाई वादक और ढोल बजाने वाले मंच पर आये और फिर इसी संगीत की लय पर नाचते हुए कुछ अभिनेताओं ने प्रवेश किया। कुछ समय बाद एक और पात्र का प्रवेश हुआ। वेशभूषा से वह पठान लगता था। अन्य अभिनेताओं की तरह वह नाचता नहीं था अपितु बड़ी उत्सुकता से इन नाचते हुए अभिनेताओं की ओर देखता था। वह शायद यह जानना चाहता था कि यह सब क्या हो रहा है? इस दृष्टि से उस की तथा दर्शकों की स्थिति एक सी थी। संगीत और नृत्य की समाप्ति पर मसखरे उसके साथ मज़ाक करने लगते हैं और वह क्रुद्ध होकर उन पर कोड़े बरसाता है। कुछ समय बाद राजा का प्रवेश होता है। राजा फारसी और उर्दू बोलता है जिसे मसखरे आदि अभिनेता नहीं समझते हैं। वे राजा और पठान के संवादों का गलत अर्थ ले लेते हैं जिस के फलस्वरूप उन्हें चाबुक से मारा जाता है। इस

पथर में शासक और सम्पन्न एवं शक्तिशाली वर्ग के अत्याचारों और मूक जनता की असहायता का दर्दनाक चित्रण हुआ था। इसी प्रकार दरज़अ पथर में दिखाया गया था कि किस तरह सीधे सादे ग्रामीण जन दरद राज कुमार से घृणा करते हैं, उसका मज़ाक उड़ाते हैं, किन्तु फिर भी उसके चाबुक सहने के लिये विवश हैं। वास्तव में सभी पथरों में हमें सत्ता के विरुद्ध आम जनता के विद्रोह की झलक मिलती है। हां, यह विद्रोह हास्य का वेश धर कर आता है। शोषित अपनी शोचनीय अवस्था पर स्वयं ठहाके लगाते हैं। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि अधिकांश बांड पथरों में जिन पात्रों पर व्यंग्य किया जाता है उन सभी का सम्बन्ध शोषक वर्ग से है। जैसे राजा, दरद राजा और रानियां, कश्मीरी पंडित, ज़मींदार, ढोंगी साधु, मुगल शहज़ादे आदि।

अन्य लोक कलाओं की तरह ही यह कश्मीरी लोक नाटक भी एक प्रकार से मर चुका है। हां इधर कुछ समय से राज्य की सांस्कृतिक अकादमी का संरक्षण मिलने पर इस नाट्य रूप के पुनरुज्जीवन के कुछ आसार दिखाई दे रहे हैं। अकिनगाम के बांडों ने श्री मुहम्मद सुब्हान भगत के नेतृत्व में कश्मीर भगत थियेटर्स की स्थापना की है और वे न केवल श्रीनगर और घाटी के अन्य नगरों में, वरन् जम्मू और दिल्ली में भी अनेक पथरों का प्रदर्शन कर चुके हैं। वास्तव में अकिन गाम के बांडों के संघटन का श्रेय श्री मोती लाल क्यमू को है। इस बांड मंडली के एक कलाकार श्री अली मुहम्मद एक बहुत ही कुशल अभिनेता हैं। दुःख इस बात का है कि यह नाटक मंडली अपने परम्परागत नाटय रूप को छोड़ कर 'तकदीर' आदि यथार्थवादी नाटक खेलने लगी है। साफ है कि ये लोग इस शैली में कोई कमाल नहीं दिखा सकते। उल्टे वे अपनी जीवन्त परम्परा से कट जायेंगे। उन्हें न माया हाथ लगेगी और न ही राम मिल सकेंगे।

बांड पथर के फॉर्म को दृष्टि में रख कर श्री मोती लाल क्यमू ने कुछ मौलिक नाटक भी लिखे हैं। इन में 'त्रुनोव' (त्रिनामधारी) मांगे (मांग) और रेडियो नाटक 'है क्या गोम !' (हाय यह क्या हुआ) उल्लेखनीय हैं। श्री राधे कृष्ण ब्रारू ने बांड पथर की शैली में ही आज से कुछ वर्ष पूर्व 'याहू' नाम से एक नाटक प्रस्तुत किया था। उसके बाद श्री मक्खन लाल सराफ ने श्री क्यमू के नाटक 'मंजलि निकअ' (खटोले का बालक) को 'इन्साफ' नाम से राज़अ पथर के फॉर्म में पेश किया। कहा जा चुका है कि बांड पथर सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्य से भरा रहता है। 'इन्साफ' में इस व्यंग्य को एक नया सदर्भ देने की कोशिश की गई थी जो बहुत हद तक सफल रही थी।

कुमार शिव

※

धर्मशाला बनी आंखें

सभी कुछ है यथावत आदमी भी और रिश्ते भी ।
मगर इस शहर की आंखें किसी ने फोड़ डाली हैं ।।

कहीं दहकी चिताओं का धुआं आकाश लिखता है,
कहीं महकी हवाओं का खिला मधुमास बिकता है,
सुनो जब भी अंधेरे सामने आए भुजाओं के,
कंगूरे तोड़ डाले आदमी ने इन दिशाओं के,

वही मौसम, वही तूफान में ठहरा हुआ सूरज ।
मगर इस शहर की आंखें किसी ने फोड़ डाली हैं ।।

दुखी है धूप का चेहरा, सुलगता देह का चन्दन,
धर्मशाला बनी आंखें, अजाबघर बना है मन,
कहीं पर शंख सीपी तो कहीं पर रेत के टीले,
कहीं पर सांझ के टुकड़े हुए हैं बैंजनी-नीले,

वही टीसें, वही पीड़ा, वही है शब्द का अन्तस ।
मगर इस शहर की आंखें किसी ने फोड़ डाली हैं ।।

डॉ० महीपसिंह

※

सचेतन कहानी : विचार की सर्जनात्मक भूमिका

गत दो दशकों में हिन्दी साहित्य की मुख्यत: दो विधाओं—कविता और कहानी में अस्तित्ववादी दर्शन का खासा बोलबाला रहा है। इस स्थिति की सब से बड़ी विडम्बना यह रही कि हिन्दी में इस विचारधारा के कुछ सूत्र वाक्य लेकर कुछ लोगों ने इसे बड़ी दार्शनिक मुद्रा में उछालना शुरु किया और बड़े रोमानी अन्दाज में कहना शुरु किया कि आज मनुष्य पूरी तरह अवश और विवश हो गया है। कुंठा और अनास्था उस की नियति बन गई है क्योंकि हम एक ऐसे युग में जी रहे हैं जहां मर्यादाएं टूट गई हैं, समाज खंड-खंड हो गया है, मानव-मूल्य विघटित हो गये हैं, किसी भी प्रकार के नये मूल्यों की दिशा अनिश्चित है इस लिए सब कुछ उस द्वार तक आ पहुंचा है जहां से केवल अन्धकार ही अन्धकार दृष्टिगत होता है।

इस प्रकार कहानी (और कविता) के माध्यम से जिस आधुनिक व्यक्ति की तलाश का सिलसिला शुरु हुआ है वह एक निरन्तर भटकता हुआ मनुष्य था, जिसके सामने न कोई आदर्श था और न कोई मूल्य। काफ्का का यह कथन उसके लिए आदर्श वाक्य बन गया था कि मेरे लिए सब से अधिक निकट सत्य यही है कि मैं एक ऐसी काल कोठरी में बन्द दीवारों से अपना सिर टकराता हूं जिस में न दरवाजे हैं और न खिड़कियां।

किसी के भी दर्शन के लिए कुछ एक वाक्यों को लेकर—जो उस के आंशिक रूप को ही व्यंजित कर पाते हैं—जब दार्शनिक मुद्रा बनाई जाती है तो पर्याप्त भ्रम फैलने की सम्भावना बन जाती है। अस्तित्ववादी विचार के संदर्भ से कटे-छंटे कुछ

वाक्यों को लेकर हिन्दी में कुछ अधकचरे लोगों ने बहुत समय तक पाठकों को अपने बौद्धिक ज्ञान से आतंकित करने का प्रयत्न किया और कुछ दिन बाद झाग की तरह नीचे बैठ गये। उन की सारी बौद्धिक-मुद्राएं थोड़ी सी साहित्यिक वाहवाही और एक अच्छी सी नौकरी की कटोरी में डूब गईं।

अस्तित्ववाद वस्तुत: जीवन को निरुपाय, अवश तथा निरर्थक समझ कर उसे एक मानवीय अर्थ तथा मूल्य देने की चेष्टा करता है। अपनी समग्र अवशता में मनुष्य ही अस्तित्ववादी चिंता का केन्द्र बिन्दु है और इस अवशता को नष्ट करने के लिए अस्तित्ववाद मानवीय स्वातन्त्र्य का प्रबल समर्थक है।

संसार के लगभग सभी दर्शन 'ईश्वर' के विचार से प्रभावित रहे हैं, यद्यपि बाद में उसे 'परम' (ABSOLUTE) कह कर निर्वैयक्तिक कर दिया गया। परन्तु सभी प्रकार के दर्शनोंवश मनुष्य सदा उपेक्षित रहा जो सभी दर्शनों का वास्तविक विषय था। इस लिए मनुष्य की समस्याओं के संदर्भ में अस्तित्ववादी की दृष्टि परम्परागत दर्शक की दृष्टि न होकर उपभोक्ता या अभिनेता की दृष्टि है। इस प्रकार इस विचारपद्धति में जीवन की समस्याओं पर विचार तटस्थ चिंतकों की ओर से न होकर भुक्तभोगियों की ओर से हुआ और उन्होंने साहित्य को भी जीवन के दैनन्दिन संघर्ष से घनिष्ठ रूप से जोड़ कर देखा।

लगभग दस वर्ष पूर्व जब हिन्दी में सचेतन कहानी की चर्चा शुरु हुई थी, इस बात को विशेषरूप से रेखांकित किया गया था कि सचेतन-आन्दोलन एक वैचारिक आन्दोलन है। साहित्य के संदर्भ में हम विचार ग्रहण तो करते रहे हैं, परन्तु विचार की भूमिका को साहित्यिक संदर्भ में कभी भी विशेष महत्वपूर्ण नहीं माना गया। इस संदर्भ में सदैव अधिक बल साहित्य की भावनामूलक प्रवृत्ति को ही दिया गया। परन्तु आज के साहित्यकारों ने इस बात को स्पष्टरूप से स्वीकार किया है कि विचार के अभाव में कोई भी लेखक वैज्ञानिक जीवन दृष्टि का निर्माण नहीं कर सकता और एक वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि के अभाव में साहित्य कुछ एक संवेगों और भावनाप्रसूत उच्छ्वासों की तात्कालिक अभिव्यक्ति मात्र बन कर रह जाता है।

'आधार' के 'सचेतन कहानी विशेषांक' (नवम्बर १९६४) में प्रकाशित अपने लेख में मैंने लिखा था कि सचेतनता एक दृष्टि है, वह दृष्टि जिस में जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है। अपने संक्रांतिकाल में चाहे हमें जीवन अच्छा लगे या बुरा, चाहे उसे घूंट-घूंट पीकर तृप्ति प्राप्त हो या चाहे नीम के रस की तरह हमें उसे आंख मूंद कर निगलना पड़े, परन्तु जीवन से हमारी सम्पृक्ति

छूटती नहीं। कड़ुए घूंटों से घबरा कर जीवन से भाग खड़े होने की बात वैयक्तिक रूप से मानव इतिहास में अनेक बार दोहराई गई है और हर बार किसी न किसी प्रकार का दार्शनिक-बौद्धिक आधार देकर उसके औचित्य की स्थापना का प्रयास किया गया है। परन्तु मनुष्य की प्रकृति जीवन से भागने की नहीं रही है। जीवन की ओर भागना ही उस की नियति है।

इस में कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य का जीवन प्रारम्भ में कुछ भी नहीं है। वह उस समय तक भी कुछ नहीं है जब तक वह अपने को कुछ बनाता नहीं। अपने आप को बनाने की यह प्रक्रिया उसे सक्रिय रूप से जीवन के साथ जोड़ देती है। सम्भवतः यहीं व्यक्ति की वह आंतरिक व्यथा उभरती है जिसे अस्तित्ववादी ऐंग्विश (ANGUISH) कहते हैं। आज के मनुष्य के हाथ से ईश्वररूपी वह जादुई चिराग जा चुका है जिस की सहायता से वह अपनी सभी चिंताओं को पलक झपकते दूर कर लिया करता था। आज वह खुद अपने सामने खड़ा है, अपने वरण की स्वतन्त्रता लेकर। आज जब वह किसी चीज के प्रति अपनी प्रतिबद्धता घोषित करता है, वह यह बात भी अनुभव करता है कि वह सिर्फ अपने लिए ही वरण नहीं कर रहा है बल्कि इस प्रकार वह सम्पूर्ण मानवता का विधायक भी बन रहा है। ऐसी स्थिति में मनुष्य एक गहरे दायित्व बोध से बच नहीं सकता। निर्णय के इस क्षण में वह एक गहरी आंतरिक व्यथा का शिकार बनता है। परन्तु यह व्यथा हमें कर्म करने से नहीं रोकती। सार्त्र ने एक स्थान पर कहा है—"वह व्यथा जिस से हमारा सम्बन्ध है हमें विरक्ति या निष्क्रियता की ओर नहीं ले जाती। यह शुद्ध और सरल व्यथा है जिसे हर वह व्यक्ति जानता है जिस ने दायित्वों को वहन किया है।"

सचेतन दृष्टि की बात करते हुए हम ने मानवीय संदर्भ के इस वृहत्तर दायित्व बोध की बात की थी जिसे पढ़ कर हिन्दी के कुछ एक अधकचरे और अधपढ़ आलोचकों ने यह कहना शुरु कर दिया था कि यह उन्हीं मान्यताओं का पुनरावर्तन है जो कहानी के संदर्भ में दूसरे तीसरे दशकों में स्थापित की गयी थीं। वस्तुतः आज के मनुष्य की संक्रमणशील स्थितियों को जिन्होंने गहरे बौद्धिक स्तर पर ग्रहण करने के बजाए चालू मुहावरों की सहायता से ही समझने का प्रयास किया है, वे इससे अधिक दूर तक देख सकने की सामर्थ्य नहीं रखते।

सचेतन दृष्टि की चर्चा से पूर्व हिन्दी कहानी क्षेत्र में चर्चा का मुख्य केन्द्र बिन्दु 'नया' शब्द था जिसे 'पुराने' की सापेक्षता में बार-बार उठाया जा रहा था। किसी वैचारिक भित्ति के अभाव में 'नया' शब्द सब से अधिक सुविधाजनक (और भ्रामक)

शब्द है। इस शब्द के माध्यम से अनेक प्रकार की अनुकूल-प्रतिकूल, प्रगतिशील-प्रतिगामी मूर्त-अमूर्त प्रवृत्तियों को एक साथ रखा जा सकता है और सभी प्रकार के अन्त: बाह्य विरोधों को नित नये होने की प्रक्रिया के तर्क से झुठलाया जा सकता है। 'नयावाद' की इस भ्रामक स्थिति के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए कवि मुक्तिबोध ने (एक साहित्यिक की डायरी में) लिखा था—"असल में नये और पुराने के प्रति पूरा अवसरवाद अपनाया गया है। इस सुविधामूलक लक्ष्यहीन अवसरवाद के कारण ही साहित्य में भी नये को रूपाकार देने की कोई तलाश नहीं है।"

देवेन्द्र इस्सर के शब्दों में— 'नई कहानी' जिस ऐतिहासिक मोड़ पर उभरी उस में प्रगतिवाद से असतुष्टि और भ्रांतिभंग की तीव्र प्रतिक्रिया थी। समस्त मूल्यों का भ्रम खुल चुका था और ऐसा कोई आदर्श या 'काज़' नहीं था जिस के लिए संघर्ष किया जा सके। क्रांति और सुधार के नारे बेकार हैं। पुरानी परम्पराएं नष्ट हो चुकी हैं। हम वर्तमान चिंतन के प्रति एक घृणापूर्ण प्रतिरोध कर सकते हैं; लेकिन उसे बदल नहीं सकते। 'नयी कहानी' वास्तव में युग सवेदना को अपने परिवेश में समेटने वाली समस्त कथा-कृतियों के लिए एक सुविधाजनक नाम था। धीरे-धीरे 'नयी कहानी' एक विशिष्ट प्रकार की संवेदना की अभिव्यक्ति का माध्यम बन कर रह गयी, जिसमें जीवन की घुटन और ऊब को बार बार दुहराया जाने लगा। यौन-व्यापार प्रधान-विषय बन गया। कहानी वापस उस बिंदु पर पहुंच गयी जिस पर पंद्रह-बीस वर्ष पूर्व थी। फ्रायड का प्रभाव उस समय की कहानियों पर स्पष्ट था। कथा-साहित्य में मार्क्स और फ्रायड का प्रभाव करीब-करीब एक ही काल में पड़ा। इसी कारण दोनों प्रभावों के अन्तर्गत रूढ़िवादी समाज से जूझने और परम्परागत मूल्यों को चुनौती दी गयी। आधुनिक कहानी के सेक्स विषय में यह चुनौती गायब है। यह कार्य, पहले, स्वतन्त्रता से पूर्व और उसके पश्चात कुछ समय तक कई कहानीकार बड़ी सफलता से कर चुके थे। सेक्स के विषय में एक विशेष प्रकार की चाटुकारिता आ गयी और कहानीकार सेक्स के बारे में उसी दृष्टिकोण का सबूत देने लगे जो सामन्ती युग की ही विशिष्टता थी। औरत को सेक्स-खिलौने का दर्जा दिया जाने लगा। अपनी प्रत्येक फ्रस्ट्रेशन का बदला अपनी पत्नी से लिया जाने लगा, क्योंकि वह बेचारी अब भी 'लिबरेट' नहीं हो सकी और जवाबी हमला नहीं कर सकती। ...... यह थी परिस्थिति जिस में सचेतन कहानी के बीज फूटे। सचेतन कहानी ने फिर से मनुष्य के टोटल सेल्फ' को स्थापित करने का प्रयत्न किया और 'जीवन' को स्वीकारने का स्वर बुलन्द किया। सचेतन कहानी मनुष्य और जीवन के तनाव का ही चित्रण नहीं बल्कि उसके संघर्ष को भी समर्पित है। कथा-साहित्य जीवन से पलायन के बजाए जीवन की ओर फिर से अग्रसर होने लगा।

सचेतन कहानी की इस विशेषता को रेखांकित करते हुए राजीव सक्सेना ने ('आधार' सचेतन कहानी विशेषांक में) लिखा था--'इस शब्द (सचेतन) से यथार्थ के प्रति, परिवेश के प्रति और जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टि का बोध होता है—मनुष्य की चेतनता का, सक्रियता का। दूसरे शब्दों में सचेतन कहानीकार मनुष्य को सर्वांग और सम्पूर्ण रूप में देखना चाहते हैं—अचेतन और अवचेतन अस्तित्व से लेकर उसके सचेतन रूप तक। और उसके सचेतन रूप को मानव व्यक्तित्व के निर्माण में निर्णयकारी मानते हैं।''

किसी वैचारिक पृष्ठभूमि के अभाव में 'नयीकहानी' के अनेक उपनायकों ने लम्बे समय तक 'अनुभववाद' या प्रामाणिक अनुभूति की चर्चा की। भोगे और झेले हुए यथार्थ की बात बार बार दोहरायी जाती रही। वस्तुत: यह प्रामाणिकतावादी दृष्टिकोण भी यथार्थ, परिवेश या जीवन के प्रति एक निष्क्रिय दृष्टिकोण का ही द्योतक था। इस प्रकार यह वर्तमान स्थिति के प्रति आत्मसमर्पण था। परिवेश और यथार्थ की सतही समझ के कारण ही ऐसे चालू मुहावरों का जन्म होता है और उन्हें बार-बार दोहराया जाता है। निहित स्वार्थों से प्रेरित वर्ग इस प्रकार के 'अनुभववाद' के इसलिए समर्थक बन जाते हैं क्योंकि वे यथास्थिति ('स्टेटस—को') बनाए रखना चाहते हैं।

इस सम्बन्ध में सचेतन कथाकारों का मत सदैव बहुत स्पष्ट रहा है। जो कुछ दिखायी पड़ रहा है उसे दिखाना ही लेखक का कार्य नहीं है। जो कुछ अनदेखा रह जाता है उसे पकड़ना और संप्रेषित करना किसी भी लेखक की परिवेशगत और विचारगत जागरूकता को प्रमाणित करता है और इससे स्थितियों तथा व्यक्तियों के भीतर की पीड़ा, विसंगति और विडम्बना का उद्‌घाटन हो पाता है।

निष्क्रियता और निरर्थकता के बहुचर्चित मुहावरों के मध्य सचेतन—दृष्टि में जीवन के सक्रिय भाव बोध पर विशेष आग्रह किया गया है। सचेतन कथाकारों ने कहा कि हम जीवन को मात्र एक प्रदत्त वस्तु के स्तर पर ही नहीं ग्रहण करते, जहां सक्रिय रूप से जीने की अपेक्षा कुछ घटित होने का बोध ही अधिक रहता है। जीवन को केवल अनुभूति के स्तर पर जीना उसे एकांगी जीना है। जीवन को समग्र रूप से जीने का अर्थ उसे जानना भी है। जीवन को जानने की दृष्टि व्यक्ति को अपने परिवेश के प्रति सक्रिय भावबोध से मुक्त कराती है और व्यक्ति चेतना की यह गत्यात्मकता ही उसे आधुनिक संस्पर्शों के निकट रखती है।

आधुनिकता एक गतिशील प्रक्रिया है। ज्ञान निष्क्रिय नहीं सक्रिय व्यापार

होता है। आधुनिकता जीवन-मूल्यों सम्बन्धी अनिवार्यता है जो सारे सामाजिक सम्बन्धों को तोड़ रही है, स्वय उनके अन्दर से जन्म ले रही है और नये आधार पर उन को पुनर्गठित करने की मांग कर रही है। वैयक्तिक और सामाजिक स्तर पर आज का व्यक्ति जिस संक्रमणशील स्थिति में से होकर गुजर रहा है वह अनेक प्रकार के तनावों, आक्रान्तियों, विसंगतियों और विडम्बनाओं से भरा हुआ है। अपनी एक कहानी 'कुछ और कितना' के संदर्भ में मैंने साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित अपनी एक टिप्पणी में लिखा था कि आज का व्यक्ति एक ही साथ कितनी मनः स्थितियों में जीता है, उन में से गुजरता है। कितनी ही एकांगी मनः स्थितियां मिल कर एक आधुनिक व्यक्ति का सृजन करती हैं और फिर वे सभी आपस में मिलकर उलझ जाती हैं और एक उलझा हुआ व्यक्ति हमारे सामने आ खड़ा होता है। आधुनिक व्यक्ति की इस बहुदरीयता को झेल पाना बहुत मुश्किल काम है। यह बहुदरीयता उसे क्षण-क्षण बिखेरती है। कभी-कभी व्यक्ति इस सब से घबरा कर, ऊब कर हताश होकर चीख उठता है या फूट-फूट कर रो पड़ता है या ए० एस० डी० की गोलियां निगलता है या चरस-गांजे के पीछे भागता है। इससे भी जब उसे सन्तोष नहीं मिलता तो वह समाधि लगाता है या हरे राम, हरे कृष्ण की धुन लगाता हुआ सड़कों पर घूमता फिरता है—या फिर आत्महत्या कर लेता है।

इस स्थिति की भी अपनी एक बाध्यता है। जीवन के सारे संदर्भ जितनी तेज़ी से बदल रहे हैं उन में हमारे देश का व्यक्ति भी एकांगी होकर नहीं रह पाएगा और जैसे-जैसे वह बहुदरीय बनेगा उसे इस आक्रांति और तनाव को झेलना पड़ेगा।

तनाव को भोगना और उसमें सक्रिय होकर जीना मुझे आधुनिक युग की दृष्टि लगती है। मैं इसे सचेतन दृष्टि कहता हूं।

डॉ० गंगादत्त 'विनोद'

※
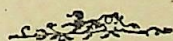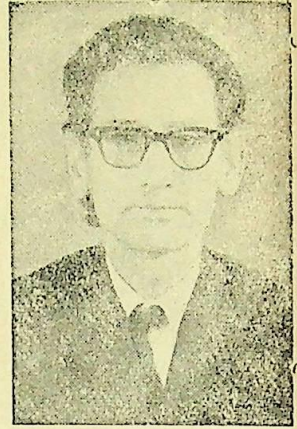
डुग्गर प्रदेश और विवाह-विधि

विवाह एक प्राकृतिक संस्कार है। जिस का फल स्त्रीत्व तथा पुंस्त्व के संयोग से सृष्टि का विस्तार है। भारतीय ऋषियों ने तीन वर्णों के लिये जो सोलह संस्कारों की प्रस्थापना की थी, उन में विवाह संस्कार प्रधान माना गया है। वि उपसर्ग जोड़ कर वह धातु में अन् प्रत्यय करके विवाह शब्द का निर्माण किया गया, जिस का अर्थ है, विशिष्ट प्रकार से धारण करना अर्थात् एक महान् उत्तरदायित्व को ग्रहण करना। भारत में विवाह संस्कार भारतीय संस्कृति का मुख्य अंग समझा जाता है, जिस की आधारशिला धर्म पर रखी गई है। दूसरे शब्दों में यह धार्मिक सम्बन्ध है। इसी कारण स्त्री को धर्मपत्नी के विशेषण से विशेषित किया गया और पति को पतिदेव। यानी भारतीय संस्कृति के अनुसार पति-पत्नी के लिये देवता के समान है और पत्नी उसका वामाङ्ग। इस स्त्रीरूपी अंग से हीन पुरुष को 'असर्व' कहा गया है, जिस का अर्थ है 'आधा या अधूरा।' भारतीय संस्कृति ने नारी को इतना ऊंचा स्थान दे दिया कि उसके बिना पुरुष किसी भी देव, पितृ कार्य को अकेले करने का अधिकारी नहीं हो सकता। यज्ञ, दान, तप, पूजा किसी भी धार्मिक कार्य में स्त्री का साथ होना अनिवार्य है। यह आजीवन निभाया जाने वाला सम्बन्ध है, जिस में शिष्ट एवं धार्मिक शृंगार निहित है। इसी कारण विवाहित दम्पति में वृद्धावस्था

में भी परस्पर शृंगार रस की धारा नहीं सूखती, भवभूति ने इसी आशय को लेकर इस विवाह की कैसी सुन्दर व्याख्या की है—

"अद्‌वैतं सुख दुःखयो रनु गतं सर्वास्ववस्थासु यत्,
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यास्मिन्न हार्यो रसः।"

यह विवाह सम्बन्ध सुख-दुख में एकाकार बना रहता है। प्रत्येक अवस्था में दोनों एक दूसरे के सुख-दुख के साथ बन्धे रहते हैं और बुढ़ापे में भी रस (शृंगार) का परिहार नहीं करते। सच्चा प्रेम यही होता है, जिस में बुढ़ापे में भी वैसा ही युवावस्था का सा सम्बन्ध बना रहे।

इसी भावना को वेद के एक मंत्र में इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है—

"गृम्णामि ते सौभत्वाय हस्तं मया पत्याजरदाष्टिर्यथा सः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धि मंह्यं त्वां दुर्गाह पत्याय देवाः॥

(अथर्व वेद)

हे शोभने मैं ऐश्वर्य की वृद्‌धि के लिये तो हाथ पकड़ता हूं। तू मेरे साथ वृद्धावस्था तक सुखपूर्वक निवास कर। भग अर्यमा आदि देवों ने तुझे गृहस्थी कर्म के लिये मुझे दिया है। इत्यादि। भारतीय ऋषियों के अनुसार विवाह विषय-वासना का उपभोग न होकर ऐहिक आमुष्मिक आमि-वृद्‌धि का साधन है। ऐहिक (इस जन्म में) उन्नति सन्तानोत्पादन द्‌वारा परम्परागत वंश, गौरव को अक्षुण्ण रखते हुए प्रजातन्तु को अविच्छिन्न रखना है जो व्यावहारिक दृष्टि द्‌वारा सब का अनुमोदनीय और वांछनीय है। आमुष्मिक (पारलौकिक) उन्नति विवाह द्‌वारा इस रूप में मानी गई है कि "अपुत्रस्यगतिर्नास्ति" पुत्रहीन की गति नहीं होती। मरणोपरांत पिण्ड दान के अभाव या और्ध्व दैहिक कृत्य के सम्पन्न न होने के कारण आत्मा अशान्त और उखड़ी हुई रहती है, यद्‌यपि आज की वैज्ञानिक परिस्थितयों में यह कथन पिछड़ा हुआ है, तथापि यह विचार वैदिक होने के कारण भारतीय संस्कृति के अन्दर आने से अब भी मान्य समझा जा सकता है। युग कोई भी चल रहा हो, किन्तु किसी भी देश की संस्कृति सदा नवीनता के परिप्रेक्ष्य में ही देखी जाती है। संस्कृति देश का जीवन एवं प्राण है। विवाह का दूसरा प्रधान लक्ष्य देव, पितृ ऋण से मुक्ति प्राप्त करना है। इस प्रकार भारतीय विवाह संस्कार इस देश की संस्कृति और धर्म का मुख्य अंग है जो वैदिक काल से चलता आ रहा है।

इस विशाल देश की संस्कृति और मान्यताएं एक हैं। प्रान्त-भेद तो प्रशासनिक इकाईयां हैं। भाषा-भेद भी इसकी मौलिक धर्म-ग्रन्थि पर आधारित है, उत्तर भारत की लगभग सभी भाषायें एक ही स्रोत से निकली हैं, जो स्रोत संस्कृत भाषा के रूप

में समग्र देश द्वारा मान्य है। यही कारण है कि इस समग्र देश की संस्कारविधि, कुछेक प्रांतीय रूढ़ियों को छोड़ कर प्राय: सभी जगह समान रूप में प्रचलित है। सारे भारत की विवाह-संस्कार-विधि भी इसी प्रकार समान रूप से प्रचलित है। जो विवाह पद्धति बंगाल या गुजरात में प्रयुक्त की जा रही है, वही कुछ प्रांतीय रुढ़ियों के हेर-फेर के साथ यू० पी०, बिहार आदि प्रांतों तथा जम्मू-कश्मीर राज्य में भी प्रचलित है। अत: डोगरा विवाह विधि वही है, जो सारे देश में परम्परा से प्रचलित होती आई, फिर भी यहां प्रांतीयता के परिप्रेक्ष्य में कुछ परम्परागत रुढ़ियां भी साथ जुड़ी हुई हैं।

डोगरा विवाह का पूर्व रूप :–

विवाह तय करने के पूर्व दोनों पक्षों की बात ठीक स्तर पर बैठाने के लिए एक व्यक्ति माध्यम का कार्य करता है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि प्रति विवाह-आयोजन में माध्यम अनिवार्य रहे। अधिकतर माता-पिता स्वयं बुद्धि और मस्तिष्क द्वारा सोच समझ कर वधु के चुनाव में विचार कर लेते हैं, किन्तु बहुत से माता-पिता ऐसे होते हैं, जिन्हें इस सम्बन्ध में किसी सयाने या अनुभवी पुरुष का दिशा निर्देशन अपेक्षित रहता है। कभी-कभी माध्यम स्वयं अपने स्वार्थवश बीच में टपक कर दोनों पक्षों की मध्यस्थता का कार्य करने लगता है. इस में उसे किसी एक पक्ष द्वारा नियुक्ति की आवश्यकता होती है, जिसे वह अपती चतुराई द्वारा स्वयं बना लेता है। ऐसे मध्यस्थ कभी-कभी दोनों पक्षों की आंखों में ऐसी धूल झोंकने में समर्थ होकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेते हैं, जिस से वर वधु दोनों अथवा एक का जीवन ही नष्ट हो जाता है, ऐसे मध्यस्थों से अकसर बचा जाता है। मध्यस्थ द्वारा दोनों ओर से बात-चीत हो जाने पर वर वधु के पिता और नजदीकी सम्बन्धी आपस में मिल कर बात अगर जंच गई तो इस पर सैद्धान्तिक रूप में निर्णय ले लेते हैं। इस कार्य के पश्चात् लड़की वालों की ओर से लड़के की जन्म कुण्डली की मांग की जाती है। डोगरा प्रदेश में यह विशेषरूप से आवश्यक समझा जाता है। इसके अनंतर दोनों के ग्रहों का मेल देखा जाता है। अगर यह ठीक बैठ गया तो विवाह लगभग तय हो जाता है। इस कार्य में कुछ बाधाएं पड़ने की आशंका भी रहती है। विशेषकर कुण्डली के सप्तम घर (जो पति के लिए पत्नी का और पत्नी के लिए पति का घर माना जाता है) पर बात आ कर अटकती है। वहां किसी की कुण्डली में भी कोई क्रूर ग्रह पड़ा हो तो विवाह में अड़चन आ जाती है अन्यथा विवाह तय हो जाता है इस कार्य की समाप्ति के बाद मान लीजिये कि शुभ ग्रहों के कारण दोनों पक्ष विवाह के लिए सहमत हो गए तो आगे का कार्यक्रम एक-एक करके चलने लगता है। सर्वप्रथम निश्चय हो जाने पर लड़की वाले लड़के को यथाशक्ति दक्षिणा-

उपहार देकर बात पक्की बैठाने की गारण्टी दे देते हैं। इसे डोगरी में 'ठाका' कहा जाता है यानी लड़की वालों ने लड़के को अधिकृत कर लिया, किन्तु अभी अन्य विशेष उपहार प्रदान करने का समारोह शेष रहता है जो किसी शुभ मुहूर्त पर सम्पन्न किया जाता है।

इस उपहार प्रदान को डोगरी में "सगन देना" कहते हैं। इसके अन्तर्गत उस दिन घर के प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा सम्बन्धी इकट्ठे होकर (कन्या पक्ष के) लड़के वालों को उपहार भेजने की सोचते हैं। उपहार देने की कोई सीमा निश्चित नहीं होती। आर्थिक स्थिति और सामर्थ्य के अनुसार उपहार दिया जाता है। साधारणतः कुछ मेवे के थाल, फलों की टोकरी या टोकरियां एवं दक्षिणा होती है। यह 'सगन' लड़के के घर जाता है, वहां पण्डित द्वारा थोड़ा सा पूजन करवा कर यह सब उपहार लड़के को तिलक के साथ दे दिए जाते हैं। इस कृत्य को वाग्दान कहा जाता है, डोगरी में इसे 'कुड़माई' कहते हैं। 'कुड़माई' हो जाने पर, दोनों पक्ष विवाह की तैयारियों में जुट जाते हैं। स्वस्थ सुन्दर एवं शिक्षित वर का इस प्रकार चुनाव करने के उपरांत गुरु एवं शुक्र दोनों ग्रहों के अस्त दोष से वर्जित मुहूर्त शास्त्र दृष्टि से निकाल कर शुभ योग में विवाह की तिथि निश्चित की जाती है, गुरु या शुक्र किसी के अस्त होने के समय को डोगरी में 'तारा डुब्बना' कहते हैं। इस 'तारा डुब्बने' के समय विवाह नहीं हो सकता, यह प्रथा सारे भारतवर्ष में है। शुभ मुहूर्त की सूचना वर पक्ष वालों को दे दी जाती है। डोगरों में वे कृत्य इस प्रकार हैं—

प्रथम दिन में 'सगन' दिया जाता है। पंडित को बुला कर गणपति पूजन होता है। फिर किसी सौभाग्यवती स्त्री को वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके पूजन में बैठाया जाता है। उस ने नाक में 'बालू' आभूषण और सिर पर लाल दुपट्टा लिया होता है। यही सौभाग्यवती स्त्री आज से लेकर सारे विवाह कृत्य में प्रतिनिधि के रूप में समय-समय पर मांगलिक कार्यों में भाग लेती है। इस दिन पूजन के उपरांत माश और गेहूं की कुछ मात्रा भिगो दी जाती है और मिट्टी की तीन चुल्हिकाएं बना कर रखी जाती हैं। आज के दिन इतना मात्र ही कार्य होता है। साथ ही इसी दिन पूजन के समय सौभाग्यवती स्त्री लड़के की कलाई में मौली बांधती है। लड़की वालों के घर में भी ऐसा ही कृत्य होता है। वहां लड़की की कलाई में मौली बांधी जाती है। इसे 'गाना बांधना' कहते हैं। इस कार्य में नव-ग्रह-पूजन भी किया जाता है।

सगन हो जाने के अनन्तर तीसरे दिन 'गण्डी' नामक कृत्य का सम्पादन किया जाता है। इस में लड़के वालों की ओर से लड़की को खाद्य वस्तुओं का एक उपहार

भेजा जाता है, जो केवल बादाम, छुहारे तथा किशमिश का मिला जुला सवा सेर का परिमाण रहता है। इसे लाल कपड़े की थैली में डाल कर ऊपर से मौली से बांध कर दिया जाता है, इस के साथ कुछ दक्षिणा भी रहती है। पुरोहित इन वस्तुओं को उठा कर लड़की के घर ले जाता है, वहां उस का सत्कार किया जाता है। संक्षिप्त पूजन के बाद मेवा कन्या की गोद में डाला जाता है और इसके अनन्तर लेकर बांट दिया जाता है। यह कार्य विवाह के पूर्व अधिक मांगलिक और सुशकुनकारी समझा जाता है।

अब विवाह-कार्य के एक दिन पहले शान्ति कृत्य आ पड़ता है जिसे डोगरी में 'सांत' कहा जाता है। यह भी बड़ा महत्वपूर्ण कार्य समझा जाता है। इस दिन सगन के दिन में भिगोए गए माश और गेहूं को पांच सौभाग्यवती स्त्रियां मिल कर पीसती हैं। माश के 'बड़े' बना दिये जाते हैं और गेहूं का पकवान घी में तला जाता है। जो चूल्ही सगन के दिन बनाई गई थी, उसी में आग जला कर, यह पकवान तैयार किया जाता है, चूल्ही पर कड़ाही रखी जाती है। उस में घी डालकर पकवान बनाया जाता है। डोगरी में इसे 'कड़ाई जज्जनी' कहते हैं। यह करने के बाद गणपति तथा नव-ग्रह-पूजन होता है। पूजन पर कन्या या वर को (कन्या के विवाह में कन्या और लड़के के विवाह में लड़का) बैठाया जाता है, साथ उसका मामा बैठता है। यह पूजन मामा द्वारा किया जाता है और इस का पूरा खर्चा उसी को करना पड़ता है। डोगरों में इस प्रथा का प्रचलन लड़की या लड़के के घर वालों को विवाह सम्बन्धी व्यय में कुछ सहायता देने के निमित्त किया गया था। शान्ति कर्म (सांत) भिन्न-भिन्न प्रांतों में अपने देशाचार और कुलाचर द्वारा मनाया जाता है। यू० पी० तथा अन्य कई प्रदेशों में इस दिन पितृ पूजन भी इसके साथ किया जाता है किन्तु डुग्गर प्रदेश में यह प्रथा नहीं है। पितृ-कार्य का सम्बन्ध मृतक पुरुषों से होने के कारण देशाचारानुसार उसे इस मांगलिक कार्य में स्थान नहीं दिया जाता। इस कार्य में सौभाग्यवती स्त्रियों को ही स्थान इस लिये दिया गया है कि वे प्रसन्नता और प्रफुल्लतापूर्वक कार्य करेंगी। विधवा होगी तो वह अपने अतीत के सुनहरे दिन याद करके अन्दर ही अन्दर रोएगी या अकुलाएगी। उसकें हृदय पर आघात भी पहुंचेगा। इसी कारण इन कार्यों में विधवाओं को स्थान नहीं दिया गया। बात तो फिर भी विवादग्रस्त ही रहती है किन्तु इस का कोई विकल्प भी नहीं मिल पाता।

शान्ति कर्म के पूजन की समाप्ति पर लड़के के शरीर पर सुगन्धित द्रव्य का लेपन करके स्नान कराया जाता है। इस लेपन को डोगरी में 'बुटना' कहा जाता है।

इस कार्य में स्त्रियां मिल कर वैवाहिक गीत गाती हैं। ये गीत डोगरी भाषा में ही मौखिक रूप में परम्परा से चलते आए हैं, जिन की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

अड़यो मलयो तेल बुटना मलेयो,
अड़यो मलयो तेल पायो लाचियां,
मेरे लाडले दा व्याह सदायो चाचियां।

लड़की के विवाह की शान्ति की समानता भी इसी रूप में की जाती है, इस 'लेपन-स्नान' कार्य का उद्देश्य वर या वधु के सौंदर्य प्रसाधन का सम्पादन करना है जो शास्त्रोक्त होने के कारण वैवाहिक नियम बन गया। डोगरा प्रदेश में सात बार स्नान कराने की प्रथा नहीं है। यू० पी०, बिहार आदि कुछ प्रदेशों में लेपन के बाद वर को सात बार स्नान कराया जाता है। बुटने में पिसे हुए जौ, माश, तेल और दही डाला जाता है। दही शीतल और शान्ति कारक है। तेल स्निग्ध होता है। दही के साथ मिल कर वह रोम-रोम में प्रविष्ट होकर शीतलता और स्निग्धता देने के साथ खुश्की दूर कर देता है। जिस से शरीर की कान्ति निखर उठती है। स्नान के अनंतर वर, वधु के हाथ रक्षा-सूत्र बांधा जाता है। यह प्रथा भारत के सभी प्रांतों में है, किन्तु कहीं-कहीं इसे पांव में बांधा जाता है, डोगरी में इसे 'गाना' कहा जाता है। इस में कौड़ी और लोहे का छल्ला बन्धा रहता है। वस्तु विज्ञान के अनुसार इन दोनों वस्तुओं में भूत-प्रेत की छाया तथा अन्य अनिष्ट प्रभावों को रोकने की शक्ति रहती है। इस कृत्य के पश्चात् विवाह लग्न तक लड़के या लड़की को कहीं बाहर घूमने की आज्ञा नहीं होती जिस से सब प्रकार की बाधाओं से उनके शरीर को सुरक्षित रखा जा सके। इससे विवाह लग्न तक उनका शरीर अधिक कान्तियुक्त बन जाता है। इस बुटना लेप और स्नान की क्रियाओं को यू० पी०, मध्य प्रदेश, बिहार प्रांतों में 'बान' कहा जाता है। शान्ति कर्म (सांत) के दिन ब्राह्मण भोज अथवा सर्वसाधारण भोज का आयोजन भी रहता है। इस शान्ति कर्म के पूजन में मामा वर के सिर पर पानी के छींटे डालता है। इसे डोगरी में 'बारे भरना' कहा जाता है। यह भी एक मंगल-अभिषेक है। इस अवसर पर डोगरा वधूटियां अपने कलकण्ठों से मंगल गान गाती हैं, जिस की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

'मामा वारड़े भरेयो,
मामा जाई खलोता बन्ने,
मामा लकड़ियां गुड़ भन्ने।'

इस कृत्य के बाद मामा लड़की को नासिका भूषण आदि पहनाता है। हाथों में चूड़ा भी डालता है। लड़का हो तो उसे यथाशक्ति दक्षिणा देता है। दूसरे दिन

लड़के का विवाह हो तो बरात चलती है। विवाह का वास्तविक रूप इसी दिन प्रारम्भ होता है। डोगरी प्रथा के अनुसार इसका विधान इस प्रकार है— सवेरे लोग विवाह वेदि के मण्डल के निर्माण में जुटते हैं। काष्ठ के चार स्तम्भों के साथ केले के स्तम्भ तथा फूलों से लदी हुई टहनियां, चारों ओर जोड़ कर ऊपर गुलाबी रंग का कपड़ा तान दिया जाता है। उसके चौकोन में फूल मालाएं भी टंगी रहती हैं। इस मण्डप का पूजन भी होता है। इस मण्डप के चारों कोनों में जल पूरित चार कलश रखे जाते हैं. फिर मण्डप का पूजन भी होता है। ये चार घट चार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) के प्रतीक हैं, जिन्हें मानव जीवन रूपी एक सूत्र में पिरोया जाता है। इनसे मानव को आयु के अनुसार चार आश्रमों में परिपालन की शिक्षा मिलती है। चार जल-कुम्भ रखने का यही एक मात्र रहस्य है। सांझ के कुछ पहले एक स्थान पर सब कुटुम्बी, मित्र तथा सम्बन्धी इकट्ठे होकर बैठते हैं। विवाह-योग्य लड़के को दूल्हा बनाया जाता है। डोगरी में दूल्हे को मराज' (महाराज) कहा जाता है। लडके को दूल्हे की पूरी पोशाक पहिना कर सभा के मध्य में बैठाया जाता है। उसके आगे दूर्वा, चावल तथा सुपारी सहित एक थाल रखा जाता है। इस समय वहां के सब लोग अपनी-अपनी दातव्य धन राशि उस थाल में रखने लगते हैं, इसे डोगरी में "बुहाड़ा" कहा जाता है। इस में जाति, वर्ग, भाई-बन्धु, दोस्त-मित्र आदि सब लोगों का योगदान रहता है। यह प्रथा परम्परा से एक-दूसरे की विवाह-शादियों के साथ जुड़ी हुई है। इसे डोगरी में 'बर्तन' भी कहा जाता है। जिन्होंने दूसरे की शादियों में जो कुछ दिया रहता है, अपने घर की शादियों में वे वैसा ही बर्तन परम्परानुसार ले लेते हैं। इस प्रकार 'बर्तन' (बुहाड़ा) उगाही हो जाने पर सब लोग संक्षिप्त भोजन करके बरात के प्रस्थान की तैयारी में लग जाते हैं महाराज के के लिये घोड़ा शृंगारा जाता है। बराती सज-धज कर चलने को तैयार होते हैं। इस कृत्य को 'सेहराबन्दी' कहते हैं। डोगरी में इसे "सेहरा लगना" भी कहते हैं। लड़के को सेहरा और पोशाक मामा से मिलती है। महाराज के घर के दरवाजे के बाहर निकलते ही नाई आरती लेकर आ जाता है। वहां दूल्हा खड़े-खड़े आरती ग्रहण करता है। स्त्रियां मधुर गीत गाने लगती हैं। जिस की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

> 'सेहरा लांदे लाड़ेगी गर्मी आई,
> पंखा झोले नाई, बेलां देन्दी माई,
> कोल खलोत्ते भाई।"

सेहरा लगा कर बुहाड़ा लेकर तथा भोजन करके बरात चल पड़ती है। उसी

समय बने-ठने दूल्हे की आंखों में भाभी काजल डालती है। इस समय के गीत की एक पंक्ति इस प्रकार है —

"के किश देगा सुरमा प्वाई।"

यानी हे देवर ! काजल डालने की दक्षिणा मुझे क्या देगा ? जब दूल्हा घोड़े पर सवार हो जाता है, तो थोड़ी देर बहन उसके घोड़े को चनों की भीगी दाल खिलाती है और गाती है—

"के किश देगा वीरा दाल चराई,
वीरा बाग फड़ाई,
के केश देगा भैंनू दा लाग।"

बरात को डोगरी में 'जानी' कहा जाता है। जब 'जानी' चलने लगती है, तो स्त्रियां गाने लगती हैं—

"लो घरै दा जानी चली,
जाना डुड्डू शहर लोको,
छः जनिहार चले,
सत्तमा म्हराज लोको।"

बरात में भाग लेने वालों की संख्या का निर्णय लड़की वालों को करना पड़ता है, जिस की सूचना विवाह से चार-पांच दिन पहले ही आ जाती है। साधारण रूप में जानी (बरात) में 20 से 40 (व्यक्ति) शामिल होते हैं, किन्तु अमीरों के यहां सौ तक संख्या पहुंच जाती है। बीस-पच्चीस वर्ष पहले यह बरात लड़की वालों के घर तीन दिन टिकती थी किन्तु अब एक ही दिन। शहरों में तो एक ही समय का भोज दिया जाता है तथा कभी-कभी केवल एक ही समय की चाय।

बरात जब लड़की वालों के घर पहुंचती है––

लड़की वाले रात को बरात के स्वागतार्थ प्रस्तुत रहते हैं। मण्डप सजा होता है, लोग किसी निश्चित स्थान पर खड़े रहते हैं, एक ओर स्त्रियां गा रही होती हैं, मांगलिक चहल-पहल ठाठें मार रही होती है और घर में विशाल पैमाने पर भोग्य पदार्थों की विविधताएं तैयार करके, सजाई जा रही होती हैं। उसी समय बैण्ड-बाजों के साथ बरात आ पहुंचती है। जन समूह के एक किनारे पर घोड़ा तथा शेष बराती खड़े हो जाते हैं। यहां दोनों पक्षों के पिता तथा मामा परस्पर गले मिलते हैं, इसे डोगरी में 'मिलनी' कहते हैं। लड़की का पिता लड़के के पिता के साथ

मिलते समय पांच दस रुपए उसके सिर पर से घुमा कर उसे देकर गले मिल लेता है। इसी प्रकार लड़के का मामा भी करता है। इस घुमाव को डोगरी में 'वारंड़ा' कहा जाता है। इस का प्रयोजन है कि कन्या पक्ष के पिता-मामा की सब विघ्न बाधाएं दूर होने की वे कामना करते हुए उन पर रुपये वारते हैं जो हार्दिक प्रेम और ममता का प्रतीक है। इसके अनन्तर जहां बरात के ठहरने का प्रबन्ध किया गया हो, वहीं सब चल पड़ते हैं। दूल्हा के लिये भी वहीं अलग-आसन जमाया हुआ होता है।

अन्य प्रांतों में दूल्हे को घोड़े पर चढ़ कर बरातियों के साथ कुछ देर श्वसुर के घर जाना पड़ता है, वहां स्त्रियां उस की आरती उतारती हैं, किन्तु डोगरा प्रदेश में यह प्रथा नहीं है। कुछ देर आराम कर लेने पर भोजन का संदेश आ जाता है। दूल्हे के लिये भोजन वहीं पर लाया जाता है। उसके साथ दो चार आदमी रहते हैं, शेष भोजन करने लड़की के घर चले जाते हैं। उसी रात को, मुहूर्त के अनुसार, जो विवाह-लग्न निश्चित किया रहता है, विवाह-वैदिका में विवाह सम्पन्न होने लगता है।

विवाह-विधि——

साधारण कृत्य के अनंतर वर-पूजन किया जाता है, फिर सामान्य कृत्य पद्धति के बाद वर को चार वस्त्र दिये जाते हैं। वर पूजन के साथ एक दोने में मधुपर्क डाल कर वर के आगे रखा जाता है। इस में दूध, दही, शहद और मक्खन मिला रहता है। प्राचीन युग में मान्य अतिथि के आगमन पर उसी मधुपर्क द्वारा उसका सत्कार किया जाता था, जिस का स्थान आज के युग में चाय-पान ने ले लिया। वर वधु-पिता का मान्य अतिथि होता है। वस्त्र चतुष्टय दान के बाद 'जौल-बन्धन' क्रिया की जाती है। इसके अन्तर्गत वर के दुपट्टे से ढाई गज का लाल कपड़ा बांध कर उसका दूसरा छोर वधु के आंचल से बांधा जाता है। फिर दोनों अग्नि-परिक्रमा करते हैं। इसे डोगरी में 'गण्ड चितरावा' कहते हैं। इस में दोनों—वर, वधु—अग्नि को साक्षी रखने के रूप में उस की परिक्रमा करते हैं।

इसके अनन्तर कन्यादान होता है। डुग्गर की प्रथानुसार पिता हाथ में संकल्प लेकर कन्या का दान करता है, किन्तु इस दान के पहले कन्या का पिता वर से गोदान करवाता है एवं कुछ रुपए पैसे उस से संकल्प करा कर बच्चों में बांट देता है। इस वस्त्र को क्रमशः धोती व दक्षिणा कहा जाता है। यह कार्य हो जाने के पश्चात् कन्या का पिता लड़के का वर के रूप में वरण करता है। संकल्प के कुछ शब्द इस प्रकार हैं—'एभिः स्वर्णाङ्गुलीयक वासोभिः राग्नि वृहस्पति

देवतैरमुक गोत्र प्रवरशाखिनममुकवेदाध्यायिन ममुक ... ... वरं कन्या दान प्रति ग्रहाकत्वेन त्वां वृणे ।"

इस के उत्तर के रूप में वर के मुंह से 'वृतोऽस्मि' वाक्य कहलाया जाता है। इस क्रिया के बाद वर को दी गई धोती उसे पहनाई जाती है। फिर कृत्य के प्रधान अक कुशकाण्डिका का सम्पादन किया जाता है। यह विवाह संस्कार का वृहत्कर्मकाण्ड है। इस की विधि के प्रदर्शन की यहां आवश्यकता नहीं। यह कुशकण्डिका कृत्य भारत के सब प्रांतों में एक ही प्रकार से किया जाता है।

यह सब कुछ कर लेने के पश्चात अब वास्तविक कन्या दान विधि शुरू होती है। वर और वधु दोनों गणेशादि पंचाङ्गदेवता का पूजन करते हैं, फिर गोत्रोच्चार होता है। पहले वर का फिर कन्या का गोत्र उच्चारित किया जाता है। यहां कन्या का पिछला गोत्र समाप्त करके उसे पति के गोत्र में प्रविष्ट किया जाता है। ऐसी कृत्य विधियों में मङ्गलाष्टक के श्लोक पढ़े जाते हैं जिन में दोनों की मङ्गल कामना की गई होती है। एक श्लोक इस प्रकार है—

'गंगा सिंधु सरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा,
कावेरी सरयू महेन्द्र तनया चर्मण्वती देविकाः।
क्षिप्रा वेत्रवती महासुर नदी ख्याता च या गण्डकी,
पूर्णा पुण्य जलैः समुद्र सहिताः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ।'

अब कन्यादान का सकल्प शुरू होता है, संकल्प की पंक्तियां काफी लम्बी हैं, जिन में दोनों पक्षों की पिछली दो पीढ़ियों के प्रधान पुरुषों (दादा और पिता) के नाम-गोत्र, प्रवर शाखा सूत्र आदि का निर्देश होकर फिर कन्या और वर का गोत्र प्रवर सूत्र शाखा आदि का उच्चार करने के बाद 'इमां कन्यां स्वर्णालिकारलंकृतां' आदि विशेषण जोड़ कर अमुक नामक वर को देता हूं, यही है संकल्प का अन्तिम भाग। अब कन्यादान हो गया मान लिया जाता है। इसके अनंतर वर वधु को अपने साथ लाए गए वस्त्राभूषण देता है, जिसे डोगरी में 'वरासूई' कहा जाता है। विवाह का यह भी एक प्रधान अंग है। जब बरासूई खोलने का समय आता है तो स्त्रियां एवं बालिकाएं विशेष उत्सुकता के साथ इसे देखने केलिये इकट्ठी हो जाती हैं। वे देखती हैं कि वर पक्ष वालों ने बहु को क्या कुछ दिया है। इसी में वर पक्ष वालों की धनाढ्यता का परिचय मिल जाता है। इसी समय वर द्वारा लाजा-होम किया जाता है। इसी बीच शख धुन होती है। बरासूई में एक सुहाग पुड़ा होता है। बरासूई के वस्त्र भूषणों से कन्या को सजा दिया जाता है और दोनों वर वधु बाहर की वेदि में आ जाते हैं। वहां घी का हवन किया जाता है। यह प्रथा डोगरा प्रदेश में ही है।

पंजाब में इसके स्थान पर चरू का होम किया जाता है। इसके अनंतर सप्तपदी का कार्य शुरू होता है। डोगरी में इसे "लामा फेरे" कहा जाता है। यह भी विवाह का प्रधान अंग है। इस सप्तपदी की तीन भांवरियों में लड़की आगे रहती है चौथी में लड़का आगे हो जाता है। तदनन्तर लड़की वर के बाईं ओर बैठ जाती है। अब उसे वामाङ्गी होने का अधिकार मिल गया है, दूसरे शब्दों में अब वह पति की अर्द्धांगिनी है, किन्तु इसके पहले वर वधु दोनों का शर्तनामा चलता है। एतत्सम्बन्धी श्लोक इसी प्रकरण में पण्डित द्वारा पढ़े जाते हैं, जिन का अर्थ भी दोनों को समझा दिया जाता है, लड़के की कुछ शर्तें (हिन्दी पद्यों में अनूदित) इस प्रकार हैं—

"सौभाग्य हित पाणि ग्रहण करता तुम्हारा मैं यहां,
तुम मुझ दयित के साथ हो, जैसे बने वैसे यहां,
वृद्धत्व तक ससार सुख भोगो सदा मम साथ हो,
पति मैं तुम्हारा हूं शुभे पत्नी हुई तुम मम यहां,
मैं प्रेम पूर्वक हूं तुझे स्वीकार करता तुम वहां।"

इसी प्रकार लड़की की कुछ शर्तें नीचे दी जाती हैं—

(1) लड़के में पुत्र पैदा करने की शक्ति हो।

(2) दोनों का धर्म एक हो।

(3) पुण्य का आधा हिस्सा पत्नी को मिलना चाहिये, इत्यादि।

शर्तों के सन्दर्भ में एक बात पति की ओर से यह भी कही जाती है—मदीय चित्तानुगतं च चितं, सदा मदाज्ञा परिपालनंच" अर्थात् हे अर्द्धांगी अब से तुमने मन वचन द्वारा मेरे साथ एकरूपता ग्रहण करनी होगी और सदा मेरी आज्ञा का पालन करना होगा। इस समय दोनों एक दूसरे की शर्तों को अग्नि को साक्षी रख कर स्वीकार करते हैं। इस सब कृत्य के हो जाने पर विवाह-दक्षिणा का संकल्प करके उसे पण्डित को दे दिया जाता है।

अन्त में मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि डुग्गर प्रदेश में उपरोक्त विवाह-विधि का पालन मुख्यतः सनातनधर्मी हिन्दुओं द्वारा ही किया जाता है।

रामकृष्ण शास्त्री

✻

अब न हमें रोको......

अब न हमें रोको मिलने की घड़ी होती ।
यार वो हर शाम को खिड़की में खड़ी होती ।।

भीड़ वहां हर दम लोगों की लगी रहती ।
वो नज़र भर उठाये तो बात बड़ी होती ।।

रंगीन बिजलियों की झिलमिल में लगे ऐसी ।
चांद की दुलारी शीशे में जड़ी होती ।।

बाल गूंथने का अवसर है कहां उसको ।
भाल पर थिरकती रेशम की लड़ी होती ।।

गोरे गाल लाल लाल सेब से ढले हैं ।
प्यार की खुमारी आंखों में चढ़ी होती ।।

बदन है गठीला रस-कलशभरा यौवन ।
अधर में सुधा की मधु-धार भरी होती ।।

साढ़ी बनारसी से तन को संवारती है ।
दूर से झलकती कोई स्वर्णपरी होती ।।

कुछ बोलती नहीं जो बस एक यह कमी है ।
वो चित्रलिखी नारी चुपचाप पड़ी होती ।।

खबर क्या किसी को किस की उसे प्रतीक्षा ।
चेहरे पै' एक उंगली कोमल सी धरी होती ।।

तस्वीर वो किसी की किस्मत नहीं बनी है ।
मिट्टी की न होती तो शायर की वरी होती ।।
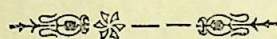
तुम्हारी शपथ मैं तुम्हारा नहीं हूं ।
भटकती लहर हूं किनारा नहीं हूं ।।

—रमानाथ अवस्थी
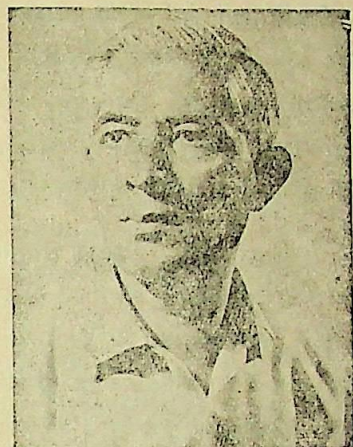
प्रो० सुभाष भारद्वाज

※

जम्मू के हिन्दी कवि : रचनाशीलता के आयाम

जम्मू में हिन्दी-कविता का उदय कब हुआ तथा इस क्षेत्र में आदिप्रयास किस सुकवि का था, इस विषय पर यहां कहने की आवश्यकता नहीं। प्रस्तुत लेख में केवल आधुनिक काल के हिन्दी-काव्य की चर्चा अपेक्षित है। हिन्दी कविता के आधुनिक काल का विकसित रूप इस शताब्दी के प्रथम दशक में सामने आया। देश के अन्य भागों में होने वाले राजनैतिक एवं आर्थिक परिवर्तनों की भांति हिन्दी कविता की यह नई करवट भी एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था और जम्मू क्षेत्र पर इस का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। तीसरे दशक तक पहुंचते-पहुंचते जब आधुनिक हिन्दी कविता निखर कर सामने आई तथा जब इस की शैलीगत विशेषताओं ने एक स्पष्ट आकार ग्रहण कर लिया तो जम्मू में भी कवियों की लेखनी इस दिशा में सरकने लगी।

इन्हीं दिनों जम्मू में हिन्दी प्रचारिणी सभा एवं साहित्य मण्डल नामक संस्थाएं हिन्दी को राज्य में समुचित स्थान दिलाने के कार्य कर रही थीं। यह सब उस देशव्यापी आन्दोलन ही का एक अंग था जो हिन्दी के साहित्य निर्माण के साथ ही उसे राष्ट्रभाषा पद पर अधिष्ठित करने के लिये चल रहा था। इस आन्दोलन ने

कई प्रतिभाओं को हिन्दी में काव्य सृजन की ओर प्रवृत्त किया। परन्तु खेद है कि इन कवियों में से, जिन्हें जम्मू में हिन्दी कविता का सूत्रपात करने का श्रेय प्राप्त हो सकता था, लगभग सभी कवि क्षेत्रीय भाषा के आंदोलन में अग्रसर हो गये। इन कवियों ने अपने 'हिन्दी-कवि-जीवन' के स्वल्पकाल में कई श्रेष्ठ कविताएं लिखीं परन्तु उन में से किसी भी कवि की रचनाएं संग्रह रूप में प्रकाशित न हो सकीं।

लगभग तीसरे दशक के अन्तिम वर्षों में ही एक कवि का कविता पाठ पुरानी मण्डी जम्मू में सुनने को मिला। नौ-दस वर्ष की आयु में सुनी गई यह कविता तो स्मरण नहीं किन्तु उस कवि का नाम अवश्य याद है। यह नाम था 'पिपासु'। कई बार मन में आता कि वह ओजस्वी कविता सुनाने वाला कवि एकाएक कहां चला गया ? और जब छठे दशक में श्री शंकर शर्मा पिपासु को जम्मू के साहित्य-क्षेत्र में पुनः सक्रिय पाया तो पता चला कि यह वही पिपासु हैं जिन के काव्य कौशल की झलक मैं बरसों पहले देख चुका था।

पिपासु के कवि ने छायावाद के उत्कर्ष-काल में आंखें खोली थीं। अतः इनकी सभी रचनाओं में लगभग उसी शैली की छाप अंकित है। 'तेरा नाम अमर हो मुझ से, मैं फिर तुझ से अमर बनूं" और 'विरह तुम्हारा अमर गान है मिलन मौन अस्पन्दित सा'। इसी प्रकार अचीन्हे प्रिय के विरह में अकुलाया हुआ कवि पुकार उठा है—'अनुपमा छवि नाचती है लोचनों में आज मेरे' और 'दुःखद दुःख भी सुखद हो अपना रहा मुझ को स्वयं क्यों ?'

देश के अन्य असंख्य साहित्यकारों की भांति श्री पिपासु भी आर्थिक कठिनाईयों के कारण एक दो से अधिक कविता संग्रह प्रकाशित नहीं कर सके हैं। 'दो चांद' नाम से आप का प्रथम संग्रह १९६५ में प्रकाशित हुआ था। यद्यपि आपकी कविताएं मुख्यतः छन्दोवद्ध हैं परन्तु नये युग के साथ चलने की होड़ में आप ने कुछ कविताएं मुक्त-छन्द में भी लिखने का प्रयास किया है। 'मन में सुख-शान्ति भरी / जीवन की तरी तरी / नाम हुआ दुनिया में / काम, अर्थ, धर्म, मोक्ष / सहजता से पा लिया।' परन्तु तुक तथा मात्राओं की एकरूपता के कारण इन रचनाओं को मुक्त-छंद की कोटि में न मान कर 'लगभग छन्दोवद्ध' कहना ही अधिक समीचीन होगा।

श्री वंसीलाल सूरी को हिन्दी के अनन्य प्रेमी के रूप में तो मैं शैशवकाल से ही जानता था किन्तु उनके कवि रूप को मैंने सर्वप्रथम छठे दशक की साहित्यिक गोष्ठियों में ही देखा। उनकी रचनाएं सुन कर चौंक सा गया। लगा कि आप एक अत्यन्त सशक्त एवं सिद्धहस्त कवि हैं। श्री सूरी राष्ट्रीयतावादी विचारधारा के

व्यक्ति थे। राष्ट्रीय आंदोलनों के साथ उन का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इसीलिए आपके आध्यात्मिक विचारों पर कहीं भी संकीर्णता की छाया दृष्टिगत नहीं होती। 'झूठी दीवारें' शीर्षक कविता आप के धर्म निरपेक्षतापरक विचारों से ओत-प्रोत है। "मित्र ! पैगम्बर और अवतार की / समानार्थ शब्द-ध्वनियों के अनुसार / एक ही शक्ति के इन / प्रतिनिधियों के प्रति / हमारी यह उपहासपूर्ण / अवहेलना क्यों ?" ब्राह्मण और शेख, दोनों को सम्बोधित करके कहते हैं—'हम दोनों धार्मिक / और अंधविश्वासी / विडम्बनाओं / और रीति रिवाजों के / बन्दी हैं /' श्री सूरी अपनी कविताओं का आरम्भ प्रायः मित्र अथवा सुहृद शब्द से करते हैं। आप की कविताओं को पढ़ कर लगता है आपके कविहृदय पर वेदान्त और उपनिषदों की गहरी छाप के साथ साथ देश की आधुनिक समस्याओं और सामाजिक विडंबनाओं के प्रति एक मुखर जागरूकता भी है। आप की शैली पर भी यद्यपि छायावादी युग की गहरी छाप है परन्तु आप की अधिकांश रचनाएं छन्दमुक्त होने के साथ ही नवीन एवं उत्तेजक भाव-प्रदर्शन तथा नवीन बिम्बों के सफल प्रयोग के कारण नयी कविता के अधिक समीप ठहरती हैं। आप की कविताएं अभी तक संग्रह रूप में सामने नहीं आईं। श्री सूरी का असमय निधन हो जाने से जम्मू के साहित्यिक क्षेत्र को अपार क्षति पहुंची है।

चौथे दशक के मध्य में प्रिंस ऑव वेल्ज़ कालिज जम्मू के अपने अध्ययन काल से ही श्री चन्द्रकान्त जोशी के कवि जीवन का आरम्भ होता है। आप की प्रारम्भिक रचनाएं कालेज की पत्रिका 'तवी' में तथा लाहौर के हिन्दी पत्रों में प्रकाशित होती रहती थीं। सम्भवतः आप विभाजन से पूर्व हिन्दी साहित्य मण्डल की गोष्ठियों में भी भाग लेते थे। जम्मू में आप की कवि रूप में ख्याति विभाजन के बाद ही हुई। जोशी हालावाद के परमप्रशंसक तथा छायावाद से बहुत प्रभावित थे। अपने मसृण भावों की उड़ान तथा कोमलकाल शब्द-विन्यास के द्वारा आप को जम्मू के हिन्दी कवियों में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। 'अनजान पहचान' शीर्षक गीत में यद्यपि कवि संसार से प्राप्त अन्याय के प्रति अपनी विवशता प्रकट करना चाहता है, पर कविता की आरंभिक पंक्तियां छायावादी अजाने प्रिय के प्रति अनंत विरह को प्रकट करती हैं। आप ने उस के प्रति अपने प्रेम को सपना कहा है। 'गीत के पहले बोल' की ये पंक्तियां—

'दूर कुछ देखा उस ने चांद। गया उस नील-क्षितिज को फांद।
पुनः उड़ता पंखों को तोल। मिला क्या लेकिन वह अनमोल'।

छायावाद की शैली के अन्तर्गत आती हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य पर लिखी आपकी 'कश्मीर—एक अनुभूति' शीर्षक कविता अपने समासबहुल संस्कृतनिष्ठ कोमल शब्दों

और नाद-सौन्दर्य द्वारा सहसा आपको श्रेष्ठ हिन्दी कवियों की कोटि में ला देती है। हिन्दी तथा संस्कृत के अतिरिक्त उर्दू भाषा पर भी आपको समान अधिकार है—'बेदाग बचा है दुनियां में कोई भी एक बशर देखो।' जोशी का एक संग्रह 'दुःख-सुख' नाम से उर्दू लिपि में प्रकाशित हो चुका है। अभी तक हिन्दी में आपका कोई संग्रह प्रकाश में नहीं आया है।

डॉ० गंगादत्त शास्त्री 'विनोद' ने कविता लिखना १९४० में आरंभ किया था। आप की कविता मुख्यत: राष्ट्रीय तथा आध्यात्मिक भावों से सिक्त रहती है। छायावादी शैली का प्रभाव आप की कविता में अभी तक बना हुआ है। इधर कुछ समय से आप की रचनाओं में आध्यात्मिक और राष्ट्रीय आदर्शवादिता के अतिरिक्त यथार्थ की ओर भी प्रवृत्ति उभरने लगी है—'लड़खड़ाते भिक्षुओं की टीस / से भी हिल चुका हूं—और निर्बलों की करुण आहें / हृदय में ज्वाला बहायें।' 'मैं लेखक हूं' नामक रचना में आप ने आज के साहित्यकारों के आडम्बर-भरे जीवन पर एक चुभता व्यंग्य उभारा है—'हिन्दी हो या डोगरी / मेरा इनसे क्या रिश्ता / जो चोखा माल खिलाए मुझ को / मैं उस के हाथों बिकता।' 'कश्मीर का इन्किलाब' और 'उल्लोल' नाम से आप के दो कविता—संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

श्री श्यामदत्त 'पराग' यद्यपि पिछले कई वर्षों से जम्मू से बाहिर हैं तो भी जम्मू के कविता-प्रेमी उन्हें भूले नहीं हैं। श्री पराग भी पांचवें दशक में ही प्रकाश में आये थे। अपने काल के बहुत से कवियों की भान्ति आप भी छायावाद से अत्यधिक प्रभावित हैं। कवि की परमतत्व को पाने की उत्कट अभिलाषा तथा उस से तारागण प्राप्ति की आकांक्षा की झलक देखिये—'कभी मधुर नूपुर-ध्वनि बनकर, तब मुस्कान अधर पर।' और फिर—'कभी गहन सागर में घुस कर निमिष मात्र में ही मथ डाला।' और—'कभी जगत के सर्वनाश का प्रलयकारी चित्र बनाया।' परन्तु इस पर भी—'मैं तुझ को पहचान न पाया।' गेयता पराग की कविता का विशेष गुण है। छन्द-प्रिय होते हुए भी कवि ने कुछ छन्दमुक्त रचनाएं की हैं परन्तु उन मे कवि को अधिक सफलता नहीं मिल सकी। छायावाद के परिवेश से मुक्त होने का प्रयास कवि ने अवश्य ही किया है परन्तु अभी तक इस दिशा में उनके अग्रसर होने के प्रमाणस्वरूप उन की कोई रचना उद्धृत नहीं की जा सकती। अभी तक आप का कोई भी प्रकाशित संग्रह देखने में नहीं आया। हो सकता है छप चुका हो और मुझ तक न पहुंच पाया हो।

श्री मनसा राम शर्मा 'चंचल' का जम्मू के साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश तब हुआ जब आप १९६२ में योजना के सम्पादक बन कर यहां आए। आप पांचवें दशक से भी

बहुत पहले से लिख रहे हैं। जब आप 'हिन्दी मिलाप' जालन्धर के सम्पादकीय विभाग में थे तब आप पंजाब के साहित्यिक क्षेत्र में अत्यन्त लोकप्रिय थे।

चंचल मुख्यतः शृंगारिक कवि हैं --'तुम्हारे नयन कोरों में / प्रणय की ज्योति जलती है' तथा 'लगी आंखें अगर मुझसे तो इसमें दोष मेरा क्या।' इस हिन्दी गज़ल द्वारा कवि उर्दू के गजलकारों से टक्कर लेता हुआ प्रतीत होता है। इसी प्रकार, 'धधकती है इस हृदय में एक ज्वाला / वेदना को प्रिय समझ कर है सम्भाला / है हलाहल प्रिय मुझे भाती न हाला।' इस गीत में प्रणयी मन की अपार वेदना उद्भासित हुई है।

इनकी कृतियों में समुचित छन्दयोजना के साथ भावाभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त एव प्रवाहशील शब्दविन्यास इनकी प्रौढ़ लेखनी के परिचायक हैं। सुषमा और अश्रुमाला नाम से आप के दो कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

पांचवें ही दशक में जो कवि सामने आये उन में सुभाष भारद्वाज भी हैं। लिखना तो आप बहुत पहले शुरू कर चुके थे परन्तु कविरूप में आप की प्रसिद्धि, पांचवें दशक के आरम्भ में, एक उग्र-वामपंथी कवि के रूप में जम्मू में राजनीतिक-सभाओं तथा साहित्यिक संस्थाओं द्वारा आयोजित कवि सम्मेलनों द्वारा हुई। कवि का राजनीतिक व्यवस्था एवं समाजगत विषमताओं के प्रति रोष एवं आक्रोशभरा स्वर उन दिनों अक्सर सुनने में आता था 'ये भिखमंगों के भगवान / ये भूखों के भाग्य विधाता / देख रहे हैं आज तमाशा।' तथा 'गीता और कुरान ने देखा, अल्लाह और भगवान ने देखा / नेहरू की सरकार ने देखा, दिल्ली के दरबार ने देखा / रेल की पटरी के ऊपर रख दी उसने अपनी छाती।' जनता की सरल भाषा के साथ साथ आप तत्समशब्द प्रधान रचनाएं भी लिख रहे थे। ताण्डव शीर्षक कविता में—कोकिल की मधुर कूहू में / मुझे भरना है रव रण का / मृत्यु का गीत सुनाना है / नहीं समय यदि जीवन का /' तथा 'विषम को यदि करना है सम / मिटाना है यदि युग का भ्रम / त्रस्त को करना होगा ध्वस्त / ध्वस्त को करना होगा क्षार / क्षार से जो निकलेगा तथ्य / वही होगा शिव-सुन्दर-सत्य /' कवि वर्तमान व्यवस्था को आमूल उखाड़ फैंकना चाहता है। उस का विचार है कि इस में किसी सुधार की गुंजाइश नहीं। अपने इस काल के कवि जीवन में भारद्वाज को लोक—रुचि का अधिक ध्यान रखने के कारण निःसन्देह बहुत लोकप्रियता मिली है, परन्तु एक वाद विशेष के साथ सम्बद्ध होने के कारण आप की कविता में नारेबाजी आगई है, जो उस काल के प्रगतिवादी कवियों में प्रायः देखी जाती थी। 1960 में 'ताण्डव' नामक कविता संग्रह प्रकाशित होने से बहुत पहले भारद्वाज की कविता एक जोरदार

करवट ले चुकी थी। यह नई कविता का प्रभाव था। इस दिशा में जम्मू में आप ने ही सर्वप्रथम प्रयास आरम्भ किया। 'तन्द्रा टूटी', 'नींद', 'दर्पण', 'कागज की वेदना' आप की इस नई करवट की प्रतीक हैं। कवि के भाव तथा शैली दोनों में आमूल परिवर्तन आ गया है—'तन्द्रा टूटी / किस की ? मेरी ? नहीं / तुम्हारी ! नहीं / हमारी ? टूटी, हां टूटी / सब कहते हैं टूटी।' इसी प्रकार—'आया है / मेरे बृज में आया है उधो / जो मेरे बृजवासियों को भूखों रह जीने का / अचीन्हे ब्रह्म का उपासने का / सन्देश दे जाएगा /' और इसी तरह—'हम कागज़ हैं ऐसे / जिस पर, जो आता है / कुछ न कुछ लिख ही जाता है /' इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि कवि को व्यंजनापूर्ण शैली द्वारा नवीन प्रतीक योजना करने में अत्यन्त सफलता मिली है। आपकी छठे दशक की अधिकांश नई कविताएं 'रेत का सागर' नाम से संग्रह रूप में छप चुकी हैं और यह पुस्तक जम्मू - कश्मीर ललितकला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत भी हो चुकी है। कवि ने छन्दोबद्ध, मुक्त छन्द तथा छन्द मुक्त तीनों शैलियों में सफलता पूर्वक लिखा है। आप की भाषा अत्यन्त उपयुक्त और ओजपूर्ण होती है। दो कविता संग्रहों के अतिरिक्त आप गद्यांजली नाम से अकादमी के एक काव्य संकलन का सम्पादन भी कर चुके हैं।

श्री रामकृष्ण शास्त्री की लेखनी पर आध्यात्मिकता की गहरी छाप है। आप ने विपुल मात्रा में भजन-गीत लिखे हैं जो सगुण-मार्गी भक्त कवियों जैसी तन्मयता, माधुर्य एवं लालित्य लिये हुए हैं। एक श्रेष्ठ कलाकार की भांति आप सदैव शांत वातावरण के लिये लालायित रहते हैं जो जीवन की विषम परिस्थितियों में इन्हें प्रायः सुलभ नहीं रहता। आश्चर्य की बात है कि आप ने अपने जीवन में सभी ओर से अन्याय झेलने हुए भी अपनी कविता में कभी भी उद्वेग, कुंठा, ग्लानि अथवा खेद जैसी किसी भावना को उद्भासित नहीं होने दिया है।

हिन्दी एवं संस्कृत की विद्वत्ता आप की प्रत्येक पंक्ति में लक्षित होती है। 'बसन्त-बहार' नामक रचना में यह चित्र दर्शनीय है—'ओढ़े पट नीलगगन / धरती के पीत वसन / झूम रहा मत्त-पवन / कलियां मुंह खोले /' श्री कृष्ण लीला नाम से आप का एक काव्य ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। यदि मैं भूल नहीं करता तो यह उपरोक्त संग्रह संस्कृत के महाकवि जयदेव के प्रसिद्ध गीतिकाव्य गीतगोविन्द से प्रभावित है। शास्त्री जी ने समय प्रवाह के प्रभाव में आकर अपनी सहज गीतिशैली से हट कर मुक्त छन्द में लिखने का प्रयास भी किया है परन्तु लगता है इस में इन्हें न तो आत्मतुष्टि ही प्राप्त हुई है और न ही इस के द्वारा आप पाठकों अथवा श्रोताओं को आकर्षित कर सके हैं। इस कथन के प्रमाणस्वरूप आप की अभी हाल ही की

कृति 'एक दो तीन' को गिनाया जा सकता है।

पांचवें ही दशक में उभरने वाली प्रतिभाओं में श्री दुर्गादत्त शास्त्री का नाम भी आता है। राष्ट्रीयता और शृंगार में आप की रुचि अधिक है। आपकी लेखनी पर छायावादी शैली का प्रभाव बहुत दिनों तक बना रहा परन्तु इधर कुछ वर्षों से आप की लेखनी से राष्ट्रीयता, शृंगार एवं आध्यात्मिकता के अतिरिक्त वर्तमान सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था के प्रति कटु व्यंग्य और क्षोभ के स्वर भी मुखरित होने लगे हैं—'देख रहा हूं महादम्भ का कुटिल, भयंकर, मोहक नर्तन /' तथा 'मैं पशुता की अंधियारी में साथी ज्योतिर्दान करूंगा /' पशुता की अंधियारी में क्षुब्ध कवि पुकार उठा है—'फूल जो कुम्हला गये हैं मैं उन्हें कैसे खिलाऊं।' आप की कविता कवि हृदय के सहज उद्गार हैं। शास्त्री जी किसी भी वाद विशेष की परिधि के भीतर अपने को नहीं बांध सकते। आप के काव्य की आधार-भूमि मानवीयता है।

शास्त्री जी का अधिकांश काव्य छन्दोबद्ध है। इधर कुछ प्रयास आपने मुक्तछन्द शैली में भी किये हैं पर आप इन्हें अपनी छन्दोमय रचनाओं जैसी भाव प्रवणता एवं शैलीगत निखार नहीं दे पाए हैं।

जम्मू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग खुलने से हिन्दी के साहित्य सृजन के क्षेत्र में कई प्रतिभाएं प्रकट हुई हैं। इस दिशा में छठा दशक अत्यन्त महत्वपूर्ण गिना जाएगा। इसी दशक में श्री ज्योतीश्वर पथिक ने लिखना आरम्भ किया। आपने हिन्दी तथा उर्दू में साथ साथ लिखना शुरू किया था। श्री पथिक एक ओर अपने को वास्तविकतावादी कहते हैं (जिससे कदाचित्त आप का अभिप्राय यथार्थवादी होने से है) पर दूसरी ओर आप किसी भी वाद में उलझना फिजूल समझते हैं। असल बात यह है कि आप मुख्यतः एक शृंगारिक कवि हैं। आप की कविता पर उर्दू का अत्यधिक प्रभाव है। परन्तु उर्दू शब्दावली हिन्दी शब्दरचना में इस तरह घुलमिल जाती है। कि पाठक अथवा श्रोता सहज ही में इनके कथ्य को पा लेता है—'हर इक घुटन के बाद भी कहता है आदमी / फूलों की कलाओं में कट जाए जिन्दगी।' 'नर्स' कविता में समाज के विवश वर्ग की वेदना के प्रति कवि के सहज सहानुभूतिपूर्ण उद्गार प्रकट हुए हैं। भाषा के अतिरिक्त छन्दरचना में भी कवि उर्दू से अधिक प्रभावित प्रतीत होता है। एक मजे की बात सुनिये। पथिक को यह खदशा है कि दूसरे साहित्यकार इन्हें कवि नहीं मानते। और इस से चिढ़ कर आप अपने समसामयिक साहित्यकारों को साहित्यकार मानने से इन्कार करते हैं। आप की इस धारणा के पीछे, हो सकता है, कोई साहित्यिक दुर्घटना रही हो, पर मैं

मुआमला साफ कर दूं—आप अवश्य ही एक कवि हैं क्योंकि आप की कविताएं इसका स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। हिन्दी में अब तक आप का एक कविता संग्रह प्रकाशित हो चुका हो

सुतीक्षण कुमार आनन्दम (जो अब सुतीक्षण कुमार शर्मा आनंदम कहलाना अधिक पसंद करते हैं) का काव्य सृजन भी छठे दशक में आ कर विकसित हुआ। वैसे प्रयास वे कुछ वर्ष पूर्व आरम्भ कर चुके थे। सुतीक्षण मुख्यतः नए कवि हैं। आप अपने आसपास के जीवन से प्रेरणा ले कर लिखते हैं। नवीन बिम्बों और नव प्रतीकों को जुटाने में आप का प्रयास श्लाघ्य है—'उबल उबल कर चावल / दा पतीले मे / बुड़क रहे हैं / बोल रहा है ढक्कन / भापवष हो कर / मांड बह रहा है बाहर / घुटे घुटे ज्यों / भाव हों मानव के /' और इसी प्रकार 'मृत कविता' में भी—'पथ में पड़ी / पाषाण अहल्या सी / पर राम / कहीं से आते दिखाई नहीं देते।' आज के बुद्धिजीवीवर्ग के जड़ता और कुण्ठा—भरे जीवन का एक चित्र देखिये—'हमारा यह चिर-परिचित कमरा / खुद हमारा ही / बन्दीग्रह बन गया है /' जीवन की घुटन से समय निकाल कर सुतीक्षण कुमार ने प्रकृति-चित्रण में भी कलम को आजमाया है—'स्वर संतूर का / गूंज रहा शाम का / झील की बहार में / लहरों के ताल पर / गुजरिया की नाव में /' आप मुक्त छन्द तथा छन्दमुक्त दोनों शैलियों में लिखते हैं। हां भाषा-विषयक आप की धारणा कुछ अनोखी सी लगती है जैसे 'डौले' (पंजाबी) जिस का सुन्दर हिन्दी पर्याय भुजदण्ड हो सकता था का प्रयोग। इसी प्रकार एक स्थान पर आपने 'हंसी' के बहुवचनार्थ 'हासे' (पंजाबी) का प्रयोग किया है। भाषा में भी कुछ सुधार अपेक्षित है। जैसे गिरी (गिरि), कन्द्रा (कन्दरा), वेषभूषा (वेशभूषा), भापवष (भापवश) खम्बों (खम्भों) आदि।

आनन्दम निश्चय ही एक होनहार एवं अत्यन्त महत्वाकांक्षी कवि हैं। आप के अब तक दो कविता संग्रह, देखती आकाश आंखें तथा नौका का इतिहास प्रकाशित हो चुके हैं। कांप-कांप रहा चक्रबन्धु नाम से एक पद्य-रूपक भी छप चुका है।

डा० ओम प्रकाश गुप्त ने अपना काव्य लेखन छठे दशक में आरम्भ किया था किन्तु थोड़े ही समय में आप की लेखनी निखर आई है। आप अपने परिवेश से प्रेरणा लेकर लिखते हैं। आप किसी वाद को नहीं मानते—परन्तु निःसन्देह समसामयिक कविता से प्रभावित हैं। आप सहज अनुभूति से प्रेरित होकर लिखते हैं। आस-पास जो कुछ भी सुन्दर, असुन्दर बिखरा पड़ा है, उसे आप विलक्षणता से अपनी कविता में उतारते हैं। आज का बुद्धिजीवी जिस उपेक्षा एवं अवहेलना-भरे माहौल में सांस लेते हुए जिस घुटन, कुण्ठा, जड़ता तथा संत्रास से आक्रांत जिंदगी

जी रहा है श्री गुप्त उसे अपने काव्योद्गारों द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। नवीनतम शैली में लिखते अवश्य हैं किन्तु आप की प्रतीकयोजना में (आधुनिक शैली की अधिकांश कविताओं की भान्ति) उलझाव एवं क्लिष्टता कम रहती है। पाठक आप के कथ्य को सहज ही में भांप जाता है। आप की कविता जहां आज के मानव की कथा एवं वेदना को वाणी देती है वहां वर्तमान दुर्व्यवस्था के प्रति कवि का आक्रोश भरा स्वर भी बीच बीच में सुनाई पड़ता है। यद्यपि कवि की प्रवृत्ति अपनी पीढ़ी द्वारा भोगे जा रहे यथार्थ को अंकित करने में अधिक सक्रिय है, तथापि कवि आशा का कोई न कोई छोर अवश्य थामे रहता है जो स्वस्थ साहित्य का चिन्ह है। पर कभी कभी आप इस ऊब, कुण्ठा एवं जड़ता भरे यथार्थ से जरा हटकर प्रकृति की मनोहारिता से अभिभूत हो कर भी कुछ न कुछ लिखते हैं। 'चन्द्रभागा के पुल पर से' नामक रचना में—'दूर थिरकते पैरों की रुन-झुन से / धवल चन्द्रिका की परछांई / मानो कुन्दन के आभूषण / जगमग जगमग।' और : 'हिमगिरि जायी / चन्द्रा री / तू कहां जा रही ?'

छन्दमुक्त शैली आप को अधिक प्रिय है, किन्तु बीच बीच में लयताल-पुष्ट स्वच्छन्द रचना भी करते हैं। भाषा तत्सम प्रधान होते हुए भी बोलचाल के उर्दू शब्दों को भी बीच बीच में समोए रहती है। आप का एक संग्रह 'सागर के तीर' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

छठे दशक में उभरने वाली प्रतिभाओं में एक और उल्लेखनीय नाम रमेश मेहता का है। साहित्य गोष्ठियों में, एकाधिक बार आपकी कविताएं सुन कर लगा था कि आप के भीतर एक विकासोन्मुख कवि पनप रहा है। सोचा हुआ सच निकला, रमेश मेहता आज जम्मू के श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं।

आप की कविता का आधार भी समसामयिक कविता की भान्ति जर्जरित सामाजिक एवं आर्थिक दुर्व्यवस्था ही है। चहुं ओर व्याप्त ऊब, घुटन और जड़ता-भरे जीवन के अनेक मार्मिक चित्र आप ने अंकित किये हैं। 'एक जीवन अभावग्रस्त' 'अभिशाप' तथा 'एक विवादग्रस्त जीवन' आदि शीर्षकों द्वारा ही कवि की भाव-दिशा का बोध हो जाता है।

कवि वस्तुस्थिति को एक तथ्य के रूप में स्वीकारते हुए कहता है—'वासनापूर्ण चेहरों पर / नैतिकता के / मुखौटे लगाए / जिये जा रहे हैं हम / एक संघर्षमय जीवन।' वर्तमान आर्थिक विषमता के प्रति कवि में कुढ़न अधिक है और आक्रोश कम। सच भी है, आज का बुद्धिजीवी कुढ़ने के अतिरिक्त कर भी क्या सकता है ? दिन की थकी हारी सड़कें तो सो गई हैं किन्तु फिर भी : 'कुछ अतृप्त

आत्माएं / बेचैनी से भरी / इधर उधर डोलती / फिर रहीं / कहीं कुछ ढूंढ़ती सी।' भयावह जड़ता का यह चित्र भी कम अर्थपूर्ण नहीं है—'चौड़ी सड़कों के / पीले अंधकार में / विचरने वालों को लगें / जैसे घोस्ट / हम हैं लैम्प पोस्ट /' मेहता की कविता व्यक्तिपरक नहीं। आप अपनी समष्टिपरक, संवेदनासिक्त रचनाओं द्वारा आज की 'बीमार जिन्दगी' जीने वालों को और अधिक बीमार करने वाली बातें न सुना कर उन्हें इस स्थिति से उबारने के लिये थोड़ा सा झिंझोड़ देते हैं। जीवन के उजियारे में कालिख पोत देने वाली शक्तियों को सम्बोधित कर कवि कहता है—'मुझे नव-प्रभात दो / मुझे नई प्रात दो / मुझे मेरे वध का प्रतिकार दो।'

रमेश मुक्तछन्द और छन्दमुक्त, दोनों शैलियों में लिखते हैं। लगता है आप कविता में गद्यात्मकता के पक्ष में नहीं हैं। तुक और लयताल आप की प्रायः प्रत्येक रचना में द्रष्टिगत होती हैं। छन्दयुक्त शैली के उदाहरण अपेक्षतया कम हैं। आप का सग्रह 'खुले कमरे बन्द द्वार' प्रकाशित हो चुका है।

श्री जितेन्द्र उधमपुरी का कवि जीवन 1964 से आरम्भ होता है। यातनाओं भरे जिस परिवेश में हम आज जैसा घुटन-भरा जीवन जी रहे हैं, उस के विविध चित्र जितेन्द्र की कविता में मिलते हैं—'कहां तक समेटोगे / कहां तक लपेटोगे /' आज का कवि ईज़ीचेयर पर बैठ कर एक वर्ग विशेष की रुचि को पूरा करने के लिये उसके अभीष्ट छवि-चित्रों का अंकन नहीं करता। उसके पास इस साहित्यिक ऐयाशी के लिये समय ही नहीं। जिस प्रकार समय-चक्र ने उस की कामनाओं, धारणाओं एवं मान्यताओं को चकनाचूर कर डाला है उसी की प्रतिक्रियास्वरूप आज के कवि ने भी कविता के सभी मान, उसकी सभी परम्पराएं अस्वीकारते हुए पुरानी पीढ़ी की सभी मान्यताओं को उखाड़ फैंका है। जितेन्द्र का कहना है – 'मुझे नहीं चाहिये / पूरे सूर्य का आलोक /' क्योंकि वह फांक भर उजाले से ही संतुष्ट हो जाता है।

जितेन्द्र मुक्त-छन्द में लिखते हैं, जिस में तुक और लयताल रखने का प्रयास प्रायः दृष्टिगत होता है। विकासोन्मुखी भाषा में अवसर नई प्रतीक योजना इन की कविता की विशेषता है—'मैं शतरंज का खेल केवल / कभी बादशाह / कभी वज़ीर / और कभी प्यादा।' आप हिन्दी के अतिरिक्त डोगरी में कविता लिखते हैं।

निर्मल विनोदी की काव्य-साधना वस्तुतः छठे दशक के मध्याह्न से शुरू होती है। परिवारगत आर्य-समाजी संस्कारों तथा राष्ट्र प्रेम की भावना ने ही बालक विनोदी को 'दो सितारों का जमीं पर है मिलन आज की रात' इस लोकप्रिय फिल्मी धुन पर गांधी जी तथा स्वामी दयानन्द पर कविता लिखने की प्रेरणा दी थी। यह बहुत

पहले सन् 57 की बात है और फिर किशोरावस्था को पार करते-करते इनकी काव्यसरिता में एक और धारा आ जुड़ी—कच्ची उमर के कच्चे किन्तु सहज एवं निश्छल प्रेम की। यह स्थिति भी चिरस्थायी न रही। विनोदी की कविता ने एक और करवट ली। अपनी सभी संस्कारगत मान्यताओं को एकाएक नकार दिया। भले ही वे संस्कार अब भी बीच-बीच में इन के साधना-पथ पर कौंध जाते हैं। अपनी ही मान्यताओं एवं धारणाओं को नकारने का कारण जीवन के कटु यथार्थ के साथ साक्षात्कार के साथ नये साहित्य का अध्ययन भी है।

इस प्रकार आप अपनी साधना के एकाधिक सोपानों को पार करके आज अपने और अपनी पीढ़ी द्वारा भोगे जा रहे यथार्थ को अपने काव्य-पट पर उतारने का प्रयास कर रहे हैं। हमारी सहयात्री पीढ़ी की विवशता से आवेष्टित सहज-निश्छलता की एक झलक देखिये—'सबूत तो निर्दोष को भी / दोषी ठहरा देता है / और फिर ऐसा दोषी / जिस की मुठ्ठियों में / सबूत नाच रहा हो।' विनोदी छन्दमुक्त शैली के साथ-साथ नवगीत सृजन का भी श्लाघ्य प्रयास कर रहे हैं। पुस्तकाकार में इनकी कोई कृति अभी तक प्रकाश में नहीं आई है।

जम्मू के काव्य-साधकों के इस विस्तृत विवरण को समाप्त करने से पूर्व उन कवियों का उल्लेख किये बिना यह लेख अपूर्ण कहा जाएगा, जिन की लेखनी से यदा-कदा, किन्तु श्रेष्ठ काव्य रचनाएं प्रसूत होकर जम्मू की काव्य-वाटिका की सुरभि को प्रगुणित करती हैं।

सुश्री शंकुतला सेठ तीसरे-चौथे दशक में जम्मू के साहित्य-मंच पर बहुचर्चित रही हैं। आप उषा नामक उच्चस्तरीय पत्रिका के सम्पादन के साथ सुन्दर कविताएं भी लिखती थीं। आप की कविता में छायावादी युग की भावगरिमा और स्रष्टा तथा सृष्टि के गहन रहस्य में झांकने की जिज्ञासा है। श्रेष्ठ प्रतिभासम्पन्न होते हुए भी लगता है आप व्यावसायिक व्यस्तता के कारण अधिक नहीं लिख पाई हैं।

सुश्री सुशीला तुली भी परम्परागत शैली में छायावादी भावुकता से भरी कविता लिखती हैं। आप की लेखनी भी पिछले कई वर्षों से लगभग मौन है।

श्री देवरत्न शास्त्री की प्रतिभा बहुमुखी है। कहानी, रेडियो रूपक तथा समीक्षा के अतिरिक्त आप श्रेष्ठ कविताएं भी लिखते हैं। छन्दोबद्ध और छन्दमुक्त, दोनों ही शैलियों में आप अभिव्यंजक, सशक्त एवं प्रवाहशील भाषा द्वारा अपने भावों में सहज संप्रेषणीयता लाने में सिद्धहस्त हैं। ऋतुसंहार का एक पद्यमय हिन्दी रूपांतर

प्रकाशित कर चुके हैं। पिछले कुछ समय से आप की लेखनी कविता की ओर अपेक्षता अधिक उन्मुख है।

डा० विद्यानाथ गुप्त की कविताएं कभी-कभी जम्मू रेडियो से प्रसारित होती हैं। आप 'हालावाद' से प्रभावित परम्परागत शैली में लिखते हैं। गेयता और पदलालित्य आपकी विशेषता है।

श्री सत्यपाल शास्त्री की कविता में एक ओर राष्ट्रीयता तथा दूसरी ओर खोखले आदर्शों का चित्रण मिलता है। आप परम्परा और आधुनिकता के समन्वय में विश्वास रखते हैं तथा मुक्त छन्द एव छन्दोबद्ध, दोनों ही शैलियों में लिखते हैं।

डा० जनक गुप्ता ने भी कतिपय सुन्दर गीत लिखे हैं जो यदा-कदा रेडियो द्वारा सुनने को मिलते हैं। आप की कविता में विप्रलम्भ शृंगार, अध्यात्म तथा समाजगत अन्याय के प्रति विरोध के विविध स्वर सुनाई पडते हैं।

श्री मान भार्गव ने साहित्यिक जीवन हिन्दी कवि के रूप में आरम्भ किया था। खेद है कि आप भी क्षेत्रीय भाषा में लिखने के लोभ का संवरण न कर सके। पर लगता है हिन्दी को आप भूले नहीं हैं। आप की कविता में सामाजिक विषमताओं और प्रशासनिक अन्याय के प्रति विरोध का जो स्वर उभरता है वह निराशाभरी निरीहता लिये रहता है। शृंगार आप को प्रिय है, किन्तु उसे वर्तमान अशृंगारिक परिवेश में अधिक प्रश्रय देने की गुंजाईश कहां है।

सुश्री उषा छवि 'व्यास' गत कुछ वर्षों से साधनारत हैं। आप की कविता नई पीढ़ी की अथाह वेदना और जर्जरित-जीवन-मानों के प्रति अत्यंत उष्ण एवं तीव्र उच्छ्वास लिये रहती है।

श्री ओम मानव आज कल बड़ी तन्मयता से काव्य लेखन में संलग्न हैं। आप की कविता वर्तमान के प्रति अनास्था और कटुकटाक्ष लिये रहती है। भाषा एवं छन्दरचना में परिष्कार अपेक्षित है।

इधर सातवें दशक के आरम्भ से ही अनेक युवा-प्रतिभाएं काव्य-साधना में अग्रसर हुईं जिन में कुछ उल्लेखनीय नाम इस प्रकार हैं —

सर्वश्री जवाहर रैणा, जगमोहन, अशोक जेरथ, बलनील देवम्, मनजीत सिंह कामरा, सुभाष शर्मा, भुवनपति शर्मा, नीलम खोसला, धिम्मी गुप्त, तथा सुशांत चौधरी आदि।

यह था जम्मू की गत तीस वर्षों की हिन्दी कविता का इतिवृत्त। जिस प्रकार अपनी

इस दुःखद यात्रा में आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार की विपरीत परिस्थितियों में यातनाओं को झेल कर इस ने अपनी आइडेण्टिटी को बनाए रख कर अपने को गतिरोध से बचाया है इस के पीछे है यहां के साहित्य-साधकों की अपार सहनशीलता और अदम्य साहस।

यहां क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य को जो स्नेह-दुलार मिला है उस का हमें खेद नहीं, खेद है तो इस बात का कि हिन्दी प्रदेशों और बड़े-बड़े शहरों के हिन्दीदान हिन्दी को अपनी बपौती समझते हैं। जम्मू के साहित्यकारों पर अहिन्दी-प्रदेशीयता का लेबल लगा कर इन के प्रति 'नाक-भौंह-सिकोड़' व्यवहार बनाए हुए हैं और इस पर भी हम जम्मू के हिन्दी लेखक जो कदम-कदम बढ़ते जा रहे हैं, इस के पीछे हिन्दी-सेवा की निष्काम लगन को छोड़ और कुछ नहीं। वही 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' वाली बात। हम सुफल-प्राप्ति से वंचित भले ही रहें पर हमारी सद्कर्म की प्रवृत्ति को हम से कोई छीन नहीं सकता। सफर जारी रहेगा, यात्री बढ़ते जायेंगे।

एक कश्मीरी लोक-गीत

मूल कश्मीरी

※

थल रुवनुक बा'थ

बजि नाविबरकथ थलहय रुवुनावस
स्वन्यहय अनुँनावस ग्वन्य करुने ।
न्वशितय कोरिहय कादस त्रावस
स्वन्यहय अनुँनावस ग्वन्य करुने ।
थलहय रुवुँनावस म्य छुमय हावस
स्वन्यहय अनुँनावस ग्वन्य करुने ।
बिरि शेहजारस गुमुँ शेहलावस
स्वन्यहय अनुनावस ग्वन्य करुने ।
ला'र ब्योल ग्यवज़ीर न्यासस त्रावस
स्वन्यहय अनुँनावस ग्वन्य करुने ।
थनुँतलुँ आमि द्वदुँ सगदिवुँनावस
स्वन्यहय अनुँनावस ग्वन्य करुने ।
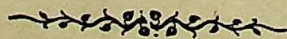
हिन्दो रूपान्तर

रूपान्तरकार—पृथ्वीनाथ मधुप

✻

धान-पनीरी रोपने का गान

उपज-वृद्धि हो फसलें सरसें
धान-पनीरी रोपवाऊं।

अटाला बनाने समधी बुलाऊं
धान-पनीरी रोपवाऊं।

साध है धान के पौधे लगाऊं
धान-पनीरी रोपवाऊं।

वेद-छांह में स्वेद ठंडाऊं
धान-पनीरी रोपवाऊं।

उत्तम किसमें ही लगवाऊं
धान पनीरी रोपवाऊं।

ताज़े दूध से इसे सिंचाऊं
धान-पनीरी रोपवाऊं।
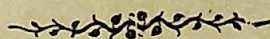
देवरत्न शास्त्री

※

डोगरी लोक-कथा मे लोक-व्यवहार तथा नीति

लोक कथाओं की परम्परा इतनी ही पुरानी है जितना स्वयं मानव और मानव सभ्यता। न जाने कब, किन अज्ञात कथाकारों ने मानव जाति की इस अमूल्य निधि की संरचना की होगी? लोक कथाओं के रूप में सरल मानव हृदय के उद्‌गार एक पीढ़ी से दूसरी को विरासत के रूप में मिलते चले आ रहे हैं। सदियां बीत जाने पर भी, अनगिनत बार सुने-सुनाये जाने पर भी यह लोक साहित्य पुराना नहीं होता, इस से बढ़कर इस साहित्य की महत्ता का और क्या प्रमाण हो सकता है? इस सम्बन्ध में जर्मन कवि गेटे का कथन अक्षरश: सत्य है—जातीय व लोक कथाओं की खास बात यह है कि इन्हें सीधे प्रकृति से अनवरत प्रेरणा मिलती है। उस में जनजीवन बच्चे की सी सरलता से हंसता-खेलता मालूम होता है। स्काटलैंड के देश भक्त कवि एन्ड्रूज फ्लैचर के इस कथन में भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है—किसी भी जाति का लोक साहित्य उस जाति के विधान से भी अधिक महत्वपूर्ण होता है।

लोक कथाओं के द्वारा सम्बद्ध जाति के लोगों के रीती-रिवाज विश्वास तथा

नीति युगों से लोक मानव को रास्ता दिखाते चले आ रहे हैं। डोगरी लोक कथा में लोक व्यवहार तथा नीति के जिन स्फुलिंगों ने लोक मानस में ज्योतिकिरण भरने का प्रयास किया है, उसका संक्षिप्त विवरण इस लघु लेख में प्रस्तुत किया जा रहा है।

यह संसार फिसलनों से भरा है। जरा भी इधर उधर कदम पड़ जाने पर भारी विपति का सामना करना पड़ सकता है। हर जगह हर समय धूर्त लोग भोले भाले लोगों को जाल में फंसा कर उन्हें मलियामेट कर देने की योजना बनाते रहते हैं। ऐसे लोगों की संगति से हमेशा बचते रहना चाहिये। मित्रता उसी से होनी चाहिये जिस से स्वभाव व आदतें कुछ न कुछ मेल खाती हों। भला चिड़िया और भैंस की मित्रता कैसे निभ सकती है? 'चिड़ी मेह्ीं दा स्हेलड़-चारा' शीर्षक डोगरी लोक कथा में ऐसी ही असमान मित्रता के कारण होने वाली विपति को चित्रित किया गया है। किन्तु कई बार ऐसे धूर्त लोगों का साहचर्य गले पड़े ढोल की भान्ति निभाना पड़ता है। ऐसे अवसरों पर इस मूल मंत्र का सदा ध्यान रखना चाहिये कि धूर्तों की किसी भी बात का विश्वास न किया जाए। किस तरह धूर्त गीदड़ मूर्ख बैल को चिकनी चुपड़ी बातों में फंसाकर शेर से उसकी हत्या करवाता है और शेर की अनुपस्थिति में उस (बैल) का दिमाग चट करके शेर को भी बुद्धू बनाता है, इसका उदाहरण 'मूरख' शीर्षक लोक कथा में मिलता है। ऐसी ही शिक्षा हमें उस कथा से मिलती है जिसमें अपनी प्रशसा सुनकर प्रसन्नता से बांग देने वाला मुर्गा आंखें बन्द हो जाने से बिल्ली की पकड़ में आ जाता है और दूसरी ओर असमय मुंह खोलने से बिल्ली शिकार से हाथ धो बैठती है। कई कथाओं में यह दिखलाया गया है कि समझदारी से मनुष्य बड़ी से बड़ी विपति से छुटकारा पा सकता है। 'बान्दरा दा मित्तर गिदड़' में किसान की कैद में रोज जूतों की मार खाने वाला गीदड़ किस तरह अपने को छुड़ा लेता है, इसका रोचक विवरण मिलता है।

इस संसार में स्वार्थी लोगों की बहुतायत है। अपने स्वार्थ के लिये प्रायः सभी दूसरों को धोखा देने से नहीं चूकते। 'लित्त' में उस नीम हकीम का चित्र खींचा गया है जो आंख की साधारण सी गड़बड़ी को अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये अनिश्चित काल तक लटकाये रखना चाहता है। इसी तरह 'बच्चा तूतन को' में भी शहतूतों के लालच में 'बाबा जी जै सीता राम' का जयकारा लगाने वाले बच्चों का चित्रण किया गया है।

प्राचीन भारतीय चिन्तन ने राजाओं व शासकों को बहुत ऊंचा स्थान दिया है;

यहां तक कि उन्हें ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। निःसंदेह ऐसी ऊंची पदवी का अधिकारी साधारण मनुष्य नहीं हो सकता। उसके कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्वों की गुरुता का बोझ इतना अधिक है कि साधारण मनुष्य में उसे उठाने की सामर्थ्य नहीं हो सकती। उस समाज जाति व देश को बहुत अभागा समझना चाहिये जिसे अयोग्य व्यक्ति शासक के रूप में मिला हो। 'झूठें दे पितर' नामक कथा में हमें जिस ऊजड़ ग्राम के दर्शन होते हैं, उसके विनाश का कारण वहां के अयोग्य शासक ही हैं। इसी तरह 'फुल्लें दी सेज' कथा में ऐसे स्वार्थी राजा का चित्र अंकित किया गया है जो केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु जीता और राज्य करता है।

संसार में न कोई किसी को कुछ दे सकता है और न उस से कुछ ले सकता है। किसी को एक जून का भोजन देकर हम अपने को उस का भाग्य विधाता मानने लग जाते हैं, इससे बढ़ कर और क्या आत्मवंचना हो सकती है? वास्तव में सब अपने-अपने भाग्य का फल ही खाते हैं। 'सब्बो अपणिआ तकदीरा दा खांदे' में उस माता-पिता की कथा है जिन के साथ-साथ परिवार की लक्ष्मी भी भागती चली जाती है। दूसरी ओर 'रिजक ते अकल' में उस ऊंट वाले का उदाहरण दिया गया है जो मूर्ख होते हुए भी भाग्य के बल पर जीवन को सुखमय ढंग से बिता रहा है। इसी तरह 'परम ज्ञानी' में, पत्थर में भी, कीड़े को भाग्य के बल पर जीता जागता दिखलाया गया है।

मेहनत की कमाई को डोगरा संस्कृति ने बहुत सन्मान दिया है। मान रहित धन-दौलत को डोगरों ने विष्ठा की तरह त्याज्य माना है। घर में अन्न का एक दाना न होते हुए भी डोगरों ने मूंछों पर ताव ही दिया है। डोगरी लोक-कथाओं में मेहनत की कमाई को फलते-फूलते दिखलाया गया है। 'बूटे रत्नें दे' में ब्राह्मण देवता राजा के हज़ारों रुपयों को लात मार कर उस (राजा) की मेहनत की कमाई के चार पैसों को स्वीकार करता है जिस से उसके घर में रुपये-पैसे की भरमार हो जाती है। 'आत्मा दे आले' में चोर के बेटे के इन शब्दों में इसी बरकत की बात कही गई है—'बापू, बड़भागी हैं ये लोग, जिनके घर में तूने कई डाके डाले, पर अब भी उन के हां दिया जल रहा है। एक तुम हो कि लूट मार से घर भर लिया, फिर भी तुम्हारे दिया नहीं जला।'

सचमुच इन्सान के हाथ में वह ताकत है कि मिट्टी को भी सोना बना दे। 'मेहनतू दी करामात' में हम पहले वर्ष अपेक्षित परिश्रम न होने के कारण एक खेत से निःसत्व फसल पैदा होते देखते हैं। दूसरे वर्ष उसी में परिश्रम के कारण ऐसा गेहूं पैदा हुआ है जिस के गुंधे आटे में धंसी कव्वे की चोंच छूटने में नहीं आती। और

तो और, परिश्रम एवं युक्ति से मनुष्य भाग्य तक को बदल सकता है। 'प्योके दी गैरत' में विचित्र ढंग से भाइयों से सन की राख मांग कर बहन उनके घर की आर्थिक दशा को बिल्कुल बदल डालती है।

आलस्य मनुष्य का ऐसा शत्रु है जो हर समय उसके शरीर में मौजूद रहता है और मौका मिलते ही उस पर घातक आक्रमण करता है। 'आलसी पुत्तर' में हमारी ऐसे आलसी व्यक्ति से भेंट होती है जो मेहनत से तो घबराता है, किन्तु सुख प्राप्ति के लिये लालायित रहता है। इसी तरह 'लबोड़ सैंख' में ऐसे निकम्मे आदमी की ओर संकेत किया गया है जो करता-धरता कुछ नहीं, केवल बढ़-बढ़ कर बातें बनाता है। डोगरी लोक-कथाओं में यह बात बार-बार दोहराई गई है कि परिश्रम के बाद किसी चीज़ को पाने में जो आनन्द आता है, वास्तविक सुख उसी में है। आराम तथा सुख-सुविधाओं के साधन जुटाने एवं अपने को आरामतलब बनाने से कष्ट ही होता है। 'दो ताप' में हम देखते हैं कि रोग आलसी अमीर के घर में जाकर वहां से टलने का नाम नहीं लेता, परन्तु गरीब मेहनतकश से डर कर भागता है। बड़ी-बड़ी बातें करने वाले लोग कैसे व्यवहार शून्य होते हैं, इस का एक और उदाहरण 'मानै दा सिर नीठा' में मिलता है, जिस में ऐसे ही विद्वानों तथा धनपतियों का चित्रण किया गया है।

बिना मेहनत किये दान-दक्षिणा के सहारे सुखमय जीवन बिताने की योजना भी आलस्य का ही दूसरा रूप है। 'सतयुग' में हमें ऐसे ही पण्डित जी के दर्शन होते हैं। आप खेत के काल्पनिक स्वामी से काल्पनिक अनुमति लेकर हर रोज़ भुट्टे तोड़ने का कार्यक्रम बना लेते हैं। आखिर एक दिन ये महानुभाव खेत के मालिक के हत्थे चढ़ ही जाते हैं। उस समय उन की जो दुर्दशा होती है, उस से उन पर दया भी आती है और हंसी भी।

डोगरा देश के लोग धर्मप्राण हैं। कदम-कदम पर वे धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य का विचार करते हैं। तीर्थ, सदाव्रत, यज्ञयाग, मन्दिरों की स्थापना के लिये डोगरा जाति में बड़ा उत्साह पाया जाता रहा है। जम्मू को तो मन्दिरों का शहर ही कहा जाता है। किन्तु डोगरा लोग यह भी जानते हैं कि मन्दिरों में हम प्रस्तरमूर्ति की नहीं, उस में निहित भावना की आराधना करते हैं। उन की निश्चित धारणा है कि भगवान की उपासना मन्दिरों के बाहर दीन-दुखियों की सेवा और उनके दुख-दारिद्रय दूर करके भी की जा सकती है। 'असली भगत' में हमें ऐसे आराधक के दर्शन होते हैं जो शिवलिंग पर यन्त्रवत् जल-प्रवाह करने की अपेक्षा शिवालय के बाहर बैठे कोढ़ी की सेवा करना अधिक महत्वपूर्ण तथा श्रेयस्कर समझता है। सचमुच ईश्वर-स्मरण

की अपेक्षा कर्तव्य-पालन का महत्व कहीं अधिक है। 'साधू' में हमें तपस्या के अभिमान में डूबे और अपनी प्रारम्भिक चमत्कारिक सिद्धियों से पशु पक्षियों को भस्म करने वाले ढोंगी महात्मा के प्रवंचक व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त होता है, वहीं दूसरी ओर पतिपरायण गृहस्थ महिला तथा कर्त्तव्य निष्ठ कसाई का उज्ज्वल चरित्र भी देखने को मिलता है। इसी प्रकार 'चण्डाल कुल' में हम जन्म से चण्डाल किन्तु कर्म से शत-प्रति-शत ब्राह्मण से भेंट करके गौरव का अनुभव करते हैं तो दूसरी ओर जन्म से ब्राह्मण किन्तु दुर्गुणों से पूर्ण चण्डाल से मिल कर ग्लानि से भर उठते हैं।

डोगरा चिन्तन ने धन की महत्ता से इन्कार नहीं किया है। जीवन की गाड़ी चलाने के लिये पर्याप्त धन नितान्त आवश्यक है। किन्तु 'पर्याप्त' की व्याख्या अपने-अपने ढंग से की जा सकती है। एक का 'पर्याप्त' दूसरे के लिए नितान्त 'अपर्याप्त' हो सकता है तो तीसरे के लिये आवश्यकता से अत्यधिक। यही कारण है कि धनी, गरीब सब के मन में लक्ष्मी के प्रति असीम मोह एवं असन्तोष पाया जाता है। सभी लक्ष्मी के पीछे भागते हैं पर वह किसी के हाथ नहीं आती। मरुमरीचिका की तरह क्षण प्रतिक्षण दूर भागती चली जाती है। इसीलिये इसे चंचला भी कहा गया है। वह एक जगह ठहर ही नहीं सकती। बड़े-बड़े पुश्तैनी सेठ-साहूकार इसे सदा के लिये अपने पास बिठाये रखने के प्रयत्न में लगे रहते हैं पर देवी जी यहां से वहां भागती फिरती हैं। वास्तव में लक्ष्मी के पदार्पण का सब से पहला और आश्चर्यजनक प्रभाव मानवबुद्धि पर पड़ता है, वह विवेकहीन हो जाती है। लक्ष्मी को स्थिर करने का प्रभावकारी उपाय यही है कि मानवबुद्धि को इस के प्रभाव से मुक्त रखा जाए, इसे लक्ष्मी की तरह अस्थिर न होने दिया जाए। जहां सुमति हो, वहीं लक्ष्मी का स्थिर निवास हो सकता है, 'जित्थै सुमति उत्थै लच्छमी' में यही सिद्धान्त कथात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

लक्ष्मी के प्रवाह को स्थिर एवं अविनाशकारी बनाने के लिये दान भी एक प्रभावशाली उपाय है। नाव को डूबने से बचाने के लिये उस में उमड़े आ रहे पानी को बाहर उलीचना पड़ता है। इसी तरह लक्ष्मी का सन्तुलन बनाये रखने के लिये दान नितांत आवश्यक हो जाता है। किन्तु दान के सम्बन्ध में पात्र कुपात्र का विवेक भी अत्यावश्यक है। कुपात्र को दान देने वाला पुण्य का नहीं, पाप का भागी होता है। 'प्राचित' में सेठ को अपने उस दान के लिये प्रायश्चित करना पड़ता है जिस में मिले पैसों से पांच भाई जाल खरीद कर हर रोज मछलियां पकड़ने का क्रूर कृत्य करते हैं।

निःसन्देह धन साधन है, साध्य नहीं। धन को जीवन का लक्ष्य बनाने वाले

कंजूसों की डोगरी लोक-कथाओं में काफी छीछालेदर की गई है। 'कसर' में हम उस शाहनी से भेंट कर सकते हैं जिसे बेटे की हजामत के लिये वयस्क पुरुष की हजामत जितना ही मेहनताना देना पड़ता है। यह बहुत बड़ा अन्याय है। बड़ों के मुकाबिले बच्चे का सिर काफी छोटा होता है। फिर उसके लिये पूरी उजरत क्यों दी जाए। शाहनी इस 'परम धन-हानि' से बचने के लिये अपने माथे से भी कुछ बाल कटवा लेती है। उस की शकल का जो कुछ होता है हो, मगर नाई यूंही मुफ्त में पैसे क्यों मार ले जाये? सचमुच धन कमाना कईयों के भाग्य में होता है, पर उस का उपभोग किसी के ही भाग्य में लिखा होता है। 'चूहा शाह' में हमारी भेंट ऐसे ही महापुरुष से होती है। उन्होंने लक्ष्मी का पालन-पोषण बेटी की तरह किया है। उस का उपभोग वे थोड़ा कर सकते हैं। इतनी विशाल धन राशि में छोटे-मोटे खर्चे से कोई कमी नहीं आ सकती। ये महापुरुष इस बात को कैसे समझ सकते हैं। 'घुंघरू पुआई आई-लक्क टुनूं-टुनूं' में खेतिहर जाट राजा के पास फरियाद लेकर पहुंचता है कि चिड़ियां दाना खा-खा कर उस का खेत उजाड़ रही हैं।

डोगरी लोक-कथाओं में कर्ज़ को मनुष्य के जीवन पर बहुत बड़ा बोझ माना गया है! मनुष्य की सभी विशेषतायें कर्ज़ के बोझ तले दब पिस जाती हैं। 'में नेईं बनना कोल्हू दा बैल', 'लैन देन', 'देना भला न बाप दा' आदि कथाओं में कर्ज़दार व्यक्ति की दयनीय स्थिति का यथार्थ चित्रण मिलता है।

प्रलोभन तथा दुष्कर्मों की ओर प्रवृत्ति के अनगिनत अवसर इस संसार में मिलते रहते हैं। प्रायः लोग इस मृगमरीचिका में फंस ही जाते हैं। परिणामस्वरूप ऐसे लोगों की जो दुर्दशा होती है, उस का उदाहरण हमें 'पाप महाबली' के नाई के रूप में मिलता है। वह इधर-उधर की भिड़ाकर राजा और पण्डित का वैमनस्य करवाने में तो सफल हो जाता है किन्तु उस षड्यन्त्र से स्वयं उसी का अत्यन्त करुण अन्त होता है। 'बेईमानै दा घोड़ा' में राजा पालित पुत्र मोहन की हत्या की योजना बनाता है किन्तु ऐन मौके पर मृत्यु स्वयं राजा के औरस पुत्र का वरण कर लेती है और दुष्कर्मी को अपने किये का फल भोगना पड़ता है। ईर्ष्या-द्वेष के बवंडर में इधर-उधर भटकता मनुष्य दूसरों को हानि पहुंचाने की झोंक में अपने कष्ट अथवा हानि का भी ध्यान नहीं रखता। 'जालोखाला' में वृद्ध दम्पति पड़ोसियों से ईर्ष्या के दुर्भाव में सिर से पैर तक डूबे हुए हैं। वे शिव से वरदान के रूप में अपनी एक टांग, एक बांह और एक आंख फुड़वा लेते हैं। इस का उन्हें कोई दुःख या पश्चाताप नहीं है। उल्टा उन्हें सन्तोष है कि पड़ोसियों की दोनों टांगें और बाहें टूट गई हैं और उन्हें दोनों आंखों से भी हाथ धोना पड़ा है। ऐसे लोग वैरी के साथ ही नहीं, उपकारी से भी दुष्टता करने से नहीं चूकते। 'चिड़ी ते कां' में चिड़िया बरसात में

भीगते कव्वे को अपने हां आसरा देती है उसके खाने-पीने का प्रबन्ध करती है, पर कव्वा मौका आने पर उसे धोखा देकर भाग जाता है। सचमुच ऐसे लोगों की समूची जाति ही दुष्ट होती है। 'मिठ्ठू कामै दी पंचैंत' में कव्वे और उस की जाति की दुष्टता का मनोरंजक परिचय दिया गया है। 'बिच्चुयें दी जान्नी' में भी ऐसी ही जाति की भयानकता का वर्णन किया गया है।

भाग्य की प्रबलता को सभी देशों के विचारकों ने स्वीकार किया है। समग्र साधन होते हुए भी, परिश्रम तथा प्रवृत्ति में किसी प्रकार की न्यूनता न होते हुए भी कार्य सिद्धि होते-होते रह जाते हैं। यही वह क्षण है जहां मानव बुद्धि भाग्य नाम की अदृश्य निर्णायक शक्ति को मानने के लिये बाध्य हो जाती है। बाल की खाल निकालने वाले बुद्धि प्रधान महानुभाव चाहे साधनों में किसी न किसी कमी को खोज निकालें, परन्तु जनसाधारण भाग्य की शक्तिमत्ता के आगे अवश्य सिर झुकाता है। डोगरी लोक-कथाओं में इस व्यापक विचार के उदाहरण भरे पड़े हैं। 'लेख अनमिट न', 'विद्ध माता', 'शनि ग्रह', 'भाग अपने अपने', 'साढ़सती', 'संजोगें दी गल्ल', 'जिन्नी लिखी भागें च', 'भागें दी खेड', आदि कथायें इस सम्बन्ध में पढ़ी अथवा सुनी जा सकती हैं।

सचमुच डोगरी लोक-कथाओं में लोक व्यवहार तथा नीति के जो संग्रहणीय तत्व भरे पड़े हैं उन की प्रकाश किरणें किसी भी जाति के लिये ज्योति स्तम्भ का काम दे सकती हैं।

जानकीनाथ कौल 'कमल'

※

कश्मीर में बसन्त

कोयल की यह घूम कहां से,
क्या बसन्त आया है आज !
चल सखि ! अलिदल के स्वागत को,
निकलें सज कर अपने साज ।

पुष्प लताओं से वन - कुन्जें,
क्या पराग यह भेज रहीं ।
जो न्योता देती फिरती हैं,
प्रकृति के आंगन में आज ?

वृक्ष विटप जर्जरित खड़े थे,
कल ही लीन तपस्या में ।
क्या उन के तप सफल हुए जो,
रंग नये भरते हैं आज ?

धरणी दारुण रूप छोड़ यूं,
दर पे अपना बाल निरख ।
जीवन-धन को पाकर सज-धज,
हरियावल में आई आज ।

लाल पीत औ नील श्वेत यह,
रत्न-जड़ित भूषण पहने
लक्ष्मी भू-अवतरित हुई है,
सम्पत्ति-सुमन सजाने आज ।

आंगन यह कश्मीर प्रकृति का,
सुन्दर सुमन विहग-पक्षी का ।
प्रफुलित जन-मन, जड़-चेतन यह,
तन्त्रित जन-तन्त्र में आज ।

कृषकों की इस कर्मभूमि में,
स्पन्दन मन्थन होते आज ।
बीजारोपन करने में भी,
प्रकृति हाथ बढ़ाती आज ।

शरत् चन्द्र शर्मा

※

गंजे

भारत में सब से व्यस्त नगरों में से एक दिल्ली और दिल्ली की सब से व्यस्त जगहों में से एक—पालम हवाई अड्डा। कंक्रीट के मैदानों और दौड़-पट्टियों के दूसरी तरफ एक विशाल इमारत है। इसी इमारत के एक कार्यालय में बाहर की नेमप्लेट पर कस्टम ऑफिसर इंस्पैक्टर हरीश माथुर लिखा था। माथुर जो स्वयं भी एक गंजा था, भूरे बालों वाले दो विदेशी आदमियों की ओर आश्चर्यचकित हो कर देख रहा था।

"मुझे विश्वास नहीं होता कि भारतीय योग के पास ऐसी जादुई शक्ति भी है जो पूर्णतया गंजे सिर पर बाल उगा दे।" माथुर ने कहा जो गंजा होने पर भी बढ़िया व्यक्तित्व का स्वामी था।

"आप खुद देख लें इंस्पैक्टर साहब कि हमारे बाल फिर से उग आये हैं। इस में कोई शक की गुंजायश नहीं है। और इसका श्रेय भारतीय योग को ही है।" उन आदमियों में से एक ने मुस्कुराते हुए कहा।

"अविश्वसनीय !" उस आदमी ने कहा जिसे इंस्पैक्टर संबोधित किया गया था।

"आप खुद चेक कर लें श्रीमान", उसने आदरपूर्वक कहा, "कि हमने नकली बाल नहीं लगाये हैं।"

अब दूसरा आदमी, जो उस समय तक चुप था, बोला, "फिर भी आपका इन बातों से कोई मतलब नहीं श्रीमान। अमेरिका से यहां आने पर हमने आप से

हमारे शरीरों के चिन्ह नोट कर लेने को कहा था। इन्हें चैक करिये और हमें छुट्टी दीजिये। नहीं तो हमारा प्लेन छूट जायेगा।" वह लापरवाह और सख्त ढग से बोल रहा था।

"ठीक है।" कहते हुए माथुर ने इंटरकॉम का बटन दबाया कुछ सैकिंड के बाद इसके स्पीकर पर एक औरत की आवाज़ सुनाई दी—

"येस सर?"

"कुमारी मीनाक्षी, आप यहां आइये। आवश्यक कार्य है!"

"ठीक है सर।"

हिन्दी में चल रहा यह वार्तालाप समाप्त हुआ। इंस्पैक्टर इंटरकाम को बंद करके फिर अंग्रेज़ी में बोले, 'वैसे मि. हेरॉल्ड क्या आप मुझे पता बता सकते हैं, मेरा मतलब है योगाश्रम के कार्यालय का।"

"हां, बिलकुल बता सकता हूं लिख लीजिये, 1957, मयूर भवन, पंचशील कालोनी।" हेरॉल्ड ने लिखवाया।

"धन्यवाद," माथुर ने जल्दी-जल्दी लिखते हुए कहा।

"मे आई कम इन सर?"

"येस" माथुर ने दरवाजे में खड़ी अपनी सैक्रेटरी को देख कर कहा। हां तो कुमारी मीनाक्षी, इन लोगों को चैकिंग रूम में ले जाइये और इनके शरीर के चिन्हों को, जैसा कि इनके पासपोर्टस में लिखे हैं, चैक करवा लीजिये।

"ठीक है, सर।" सैक्रेटरी ने आदरपूर्वक कहा और फिर उनकी तरफ मुड़ कर कहा "मेरे साथ आइये।"

"आश्चर्य, अत्यन्त आश्चर्य" जब वे लोग बाहर चले गये तो माथुर साहब बुदबुदाये।

आधे घंटे बाद, माथुर की कार्नी कैडिलक प्रोफेसर मलिक, जो एक वरिष्ठ वैज्ञानिक होने के साथ माथुर के अभिन्न मित्रों में से एक थे, के घर की तरफ भाग रही थी। प्रोफेसर मलिक वह तरीका ढूंढने की कोशिश कर रहे थे, जिससे अन्य धातु सोने में बदले जा सकें। माथुर ने कार रोकी, और थोड़ी देर बाद ही वह प्रोफेसर से बात कर रहे थे। प्रोफेसर कह रहे थे, "क्या कहते हो तुम माथुर, ऐसा होना एकदम असम्भव है।"

उनके चेहरे पर अविश्वास के चिन्ह स्पष्ट दिखाई दे रहे थे।

"लेकिन ऐसा हुआ है, प्रोफेसर। यह अच्छी तरह चैक कर लिया गया था कि कहीं उन्हों ने बनावटी बाल तो नहीं लगाये हुए हैं। उनके बाल असली थे।"

"सुनो प्यारे माथुर, मैं कई योगियों के सम्पर्क में रहा हूं। कई किताबें भी पढ़ी हैं। मेरी जानकारी के अनुसार योग में ऐसी शक्ति नहीं है।"

"लेकिन"—माथुर ने कहा किन्तु प्रोफेसर ने टोक दिया......

"वैसे अगर तुम अपनी उत्सुकता शान्त करना ही चाहते हो तो एक काम करो। योगाश्रम जा कर अपने आप को दिखा लो लेकिन मुझे तो यह एक ढोंग लगता है।"

"ठीक है मैं वहां जाऊंगा। मुझे वहीं से अपने कैमरे की रीलें भी लेनी हैं। अच्छा, बाई।"

माथुर बाहर आया अपनी कार में बैठा और चल पड़ा। उसकी कार पंचशील की ओर जा रही थी।

पांच मिनट के बाद वह कैमरे की रीलें लेने के लिये रुका, रील कैमरे में डाली और फिर चल दिया।

चन्द मिनट बाद वह मयूर बिल्डिंग के ग्राऊंड फ्लोर पर स्थित मैडीकल चैकिंग रूम में एक बढ़िया कुर्सी पर बैठा हुआ था। एक खूबसूरत लड़की कुछ मशीनों को व्यवस्थित कर रही थी।

कमरा साधारण था, लेकिन दायीं दीवार कन्ट्रोल-पैनलों से पूरी तरह ढकी हुई थी। पैनलों पर कई स्विच थे जिनके नीचे लेबल लगे हुए थे जैसे विद्युत-दर्शी, वायु ताप दर्शी; अगले दो शब्द उसके लिये एक चेतावनी से थे। प्रोफेसर के शब्द उसके कानों में गूंजने लगे "यह तो मुझे एक ढोंग सा लगता है।"

उसने एकदम अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर लिया। उसने उस लड़की को सम्बोधित किया, "सुनिये कुमारी जी, क्या मैं सिगरेट पी सकता हूं।"

"हां, हां, जरूर पी सकते हैं।" उसने मुस्कराते हुए कहा। माथुर ने सिगरेट का पैकट और लाईटर निकाला। "आप भी लेंगी?" उसने कहा।

"धन्यवाद" और लड़की ने सिगरेट ले लिया।

माथुर ने अपनी सांस रोक ली, लाईटर जलाया और उसका सिगरेट सुलगाया। लड़की ने अभी एक कश लिया ही था कि वह लहराई। माथुर ने उसे संभाला और सोफे पर लिटा दिया। फिर उस ने लाइटर में ही एक छोटे से लाल बटन को दबा दिया। वह गैस जिस ने लड़की को बेहोश कर दिया था, निकलना बंद हो गयी।

माथुर ने फिर उन शब्दों की ओर देखा और मुस्करा दिया। उन शब्दों में से एक धातु-परीक्षक था और दूसरा था अलार्म। एक कस्टम आफिसर होने के नाते धातु परीक्षक नामक मशीन से भली भान्ति परिचित था। यह मशीन यह देखने के काम आती है कि यात्री अपने साथ सोना वगैरह तो नहीं ले जा रहे।

अब माथुर ने बायीं दीवार पर रोशनदान देखा। उसने दूसरी तरफ के कमरे में देखना चाहा लेकिन रोशनदान काफी ऊंचा था। उसने उसके नीचे कुर्सी रखी और उस पर खड़ा हो गया। रोशनदान अभी भी दो फीट ऊंचा था। उसने कैमरे को ऊपर उठाया और रोशनदान से दूसरे कमरे के विभिन्न दिशाओं में फोटो लिये।

फिर वापिस आ कर, अपनी कुर्सी पर बैठ कर उसने सिगरेट जला लिया।

लड़की होश में आ रही थी। उसने आंखें मलीं और उठ खड़ी हुई।

"ओह, आप की सिगरेट बहुत तेज थी।" उसने कहा। वह नहीं जानती थी कि वह सारा समय बेहोश रही थी।

'जी हां, इसमें थोड़ी सी अफीम है।"

"अच्छा अब सिगरेट बुझा दें। हमें देर हो रही है।"

"ठीक है।" कह कर उसने ऐशट्रे में अपना सिगरेट बुझा दिया। लड़की ने उसके सिर पर एक टोप जैसी मशीन रख दी और कुछ स्विच ऑन किये। कुछ सुईयां कांपने लगीं। उसने उन्हें बन्द कर दिया, टोप उतारा और माथुर के साथ बाहर आ गई।

"आ'यम सौरी मि. प्रकाश," उसने बाहर मेज पर बैठे एक व्यक्ति को संबोधित किया था, 'कि मि. माथुर के बाल उग नहीं सकते।"

"ओह," माथुर ने ऐसा दिखाया जैसे उसे गहरा आघात लगा हो। वह बाहर आया, कार में बैठा और घर की तरफ चल दिया। उसे विश्वास था कि योगाश्रम एक ढोंग है। लेकिन वहां क्या अपराध किया जा रहा था इसका अंदाजा उसे न था।

अगले दिन, शाम को प्रोफेसर कुछ प्रयोग कर रहे थे कि घण्टी बज उठी। वे उठे और दरवाजा खोला। मि. माथुर अपने आठ वर्षीय बेटे के साथ सामने खड़े थे।

"अरे माथुर, आओ, आओ, कैसे हो।" उसने स्वागत किया।

"ठीक हूं।"

"नमस्ते प्रोफेसर अंकल।"

"नमस्ते, नमस्ते। क्या हाल है भई? पढ़ाई कैसी चल रही है।"

"ठीक है, अंकल।"

वे कुर्सियों पर बैठ गये और माथुर बोलने लगा, "तो प्रोफेसर, कल मैं योगाश्रम गया था। वहां मैंने कई संदिग्ध चीजें देखीं।"

"कौन सी चीजें।"

"मैंने वहां दो लीवर देखे जिन पर धातु-परीक्षक और अलार्म लिखा था।"

"वाह" प्रोफेसर उत्सुक हो उठे।

"और एक चीज़ और। लड़की को बेहोश कर के मैंने कुछ फोटो लिये थे, एक रोशनदान से एक दूसरे कमरे के। यह हैं वे फोटो। उन में एक मशीन है जो बिल्कुल तुम्हारी इस मशीन जैसी है।"

उसने एक मशीन की ओर इशारा किया।

"क्या?" प्रोफेसर हैरान हो गये।

"वैसे प्रोफेसर, इस मशीन से क्या.........."

"ओ राजेश, अरे...अरे नहीं करो, मशीन चल रही है।" प्रोफेसर एकदम चिल्ला उठे।

असल में, उनकी बात-चीत के दौरान, बच्चे ने अपना सिर उस मशीन में डाल दिया था जिसके बारे में वे बात कर रहे थे और ऐसा उसने सिर्फ अपनी उत्सुकता को शान्त करने के लिये किया था। और जैसे ही उसने अपना सिर बाहर निकाला.........

"हे मेरे भगवान!" वे दोनों एक साथ चिल्ला उठे। लड़के के काले बाल गायब थे और उसकी गंजी चांद ट्यूब लाईट की रोशनी में चमक रही थी।

"प्रोफेसर यह क्या हो गया?" माथुर ने दुख भरी आवाज़ में कहा।

"एक मिनट ठहरो!" प्रोफेसर ने कहा। वह किसी विचार में मग्न थे। कुछ क्षण सोचने के बाद उन्होंने कहा, "सुनो बच्चे एक काम करो। अपना सिर फिर इसमें डालो।"

उसने ऐसा ही किया। प्रोफेसर ने चाबी को उल्टा घुमा कर मशीन चला दी। मशीन घरघराने लगी। बीस सैकिंड के बाद प्रोफेसर ने मशीन बंद कर दी। बच्चे ने अपना सिर बाहर निकाला और......उसके सिर के बाल फिर आ चुके थे। माथुर आश्चर्यचकित हो कर उसे देख रहे थे। प्रोफेसर मुस्करा रहे थे।

"इस सब का क्या अर्थ है, प्रोफेसर" माथुर ने हैरानी से पूछा।

"इसका मतलब है एक तस्कर गिरोह का अंत।"

"क्या ?" माथुर का आश्चर्य दुगना हो गया।

"सुनो, इस मशीन में वहां एक सोने की प्लेट है। और यह कुछ तारें हैं। जब इस दूसरी ताम्बे की प्लेट को केथोडिक इन्फैक्टर दिया जाता है, तो सोने की प्लेट से सोने के अणु उस प्लेट पर जम जाते हैं। यह तारें ही केथोडिक प्रभाव देने वाली हैं। जब इसके बाल इन तारों के साथ छुए तो कैथोडिक प्रभाव इसके बालों में आ गया इससे सोना इसके सिर पर चिपक गया जिस से वह हमें गंजा जैसा लगा। लेकिन जब यह प्रक्रिया उलटाई गयी तो सोने के कण उड़ कर वापिस प्लेट पर चले गये। परिणामस्वरूप उसका सिर पहले जैसा हो गया। तो प्यारे माथुर यही वजह है कि तुमने यही मशीन उस योगाश्रम में भी देखी। विदेशों से लोग यह सोना सिर पर लगा कर यहां आते हैं और तुम इन्हें गंजा समझ कर सकुशल निकल जाने देते हो। वह सोना यहां उतार लिया जाता है। इस प्रकार यह तस्करी चल रही है।" प्रोफेसर चुप हो गये।

"ओह इतना बड़ा षड़यन्त्र।" माथुर उठा और अपने असिस्टेन्ट को योगाश्रम पर छापा मारने और उन सब गंजों को जो बाल उगाने के लिये विदेशों से आये थे वन्दी बनाने के लिये कहने को फोन की ओर बढ़ गया।

बलनील देवम्

※

परिचय

व्यक्तियों के घेरे में हम
चीखते चिल्लाते से
कभी हंस पड़ते हैं अपने आप पर—
वक्ष तान कर खड़े होते हुये भी
दब्बू से दिखने लगते हैं—
और कभी
नभ की ऊंचाईयों को
थामते-थामते
नीचे धंस जाते हैं—
इंगित की ओर बढ़ते पाद
विरोधी दिशा को
भागते हैं—
फिर भी
'मैं-मैं-मैं' का शोर
वायुमंडल में
तैरता रहता है।

विजय सुमन

※
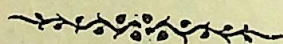
लक्ष्यहीन

जीवन के इस कठिनाईयों से भरपूर रास्ते पर पथिक यों चले जा रहे हैं जैसे चलते रहना ही उन के जीवन का लक्ष्य हो।

कुछ पथिकों के सामने उन की मंज़िल है और वे तेज़ी के साथ अपनी मंज़िल की ओर बढ़े जा रहे हैं, कुछ एक तो अपनी मज़िल की खोज में बढ़ रहे हैं, उन के कदम नपे तुले हैं। कुछ ऐसे हैं जिन के सामने कोई लक्ष्य नहीं कोई मज़िल नहीं है, वे यों ही चले जा रहे हैं—लक्ष्य हीन—निरर्थक—जैसे भटकना और चलते रहना ही उन का जीवन हो, शायद उन्हें मज़िल की दूरी का एहसास ही मंज़िल तक पहुंचा दे, पर वे इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं और यों ही चलते जा रहे हैं।

चलते रहने का यह क्रम जाने कब से जारी है और कौन कह सकता है कि यह क्रम कब तक जारी रहेगा?

प्रेम भी एक ऐसा ही पथिक है। उसे ज्ञात नहीं कि वह कहां जा रहा है? किसके पास जा रहा है, और क्यों जा रहा है। वह इस भयानक रात में, अपने कन्धों पर बिस्तर और ज़रूरत का दूसरा सामान उठाए आगे बढ़ा जा रहा है। आकाश पर बादलों की फौज जमा है, बादल एक दूसरे से टकराते हैं, जोर की गड़गड़ाहट होती है, और फिर इन्हीं बादलों में कभी बिजली यों चमक जाती है जैसे किसी को कोई भूली बिसरी बात याद आ गई हो। मगर प्रेम को कुछ भी याद नहीं आता है। उस के लिए तो बिजली की चमक इस काली और भयावनी रात में केवल पथ प्रदर्शक का काम कर रही है। उसकी

कोई मंजिल नहीं है। आखिर वह कहां जा रहा है? वह थक भी गया है और चाहता है कि कहीं सिर छुपाने के लिए जगह मिले तो वह दम भर आराम कर ले।

बिजली एक बार जोर से चमकी, प्रेम ने देखा कि उस के पांव उसे एक झोंपड़ी के निकट ले आए हैं, अनजाने में ही वह झोंपड़ी के पास आ गया है।

उसने बिना किसी झिझक के झोंपड़ी का द्वार खोला, और अन्दर दाखिल हो गया। उसने जेब से दीयासिलाई की डिबिया निकाल कर जलाई। उसने देखा कि झोंपड़ी बिलकुल खाली है, उसके मस्तिष्क की तरह। उसने अपना सामान कंधों से उतार कर फर्श पर रख दिया और कुछ सुख का अनुभव किया, फिर उसने सिग्रेट सुलगाई और लम्बे-लम्बे कश लगाने लगा।

जब उस का मस्तिष्क कुछ सोचने के योग्य हुआ तो अतीत की पुस्तक के पन्ने तेजी के साथ पलटने लग गए। उसे याद आ रहा था कि जब वह आठ या नौ वर्ष का ही था, कि एक रात उस के पड़ोसी देश ने उस के गांव पर अचानक आक्रमण कर दिया, देखते ही देखते तमाम गांव धुएं से भर गया और उस धूएं में जहां उस का पूरा परिवार छिप गया था वहां उस का अपना सांस भी इतना घुटा था कि वह बेहोश हो गया था। जब उस की आंख खुली थी तो वह एक सरकारी यतीम खाने में था। वहीं उस का पालन पोषण हुआ, वहीं उसने थोड़ी सी शिक्षा प्राप्त की। वह अपनी शिक्षा जारी रखना चाहता था कि उस के गांव पर शत्रु ने फिर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण ने प्रेम के मन और मस्तिष्क को बुरी तरह झंझोड़ दिया। अपने माता पिता तथा भाई बहिनों के बारे में वह कुछ भी न जान सका था। इसलिये उसने यही अच्छा समझा कि वह पूरे देश के भाई और बहिनों को अपना भाई और बहिन समझ ले। दृष्टिकोण की यह व्यापकता और अन्तरमन का वह परिवर्तन उसे देश प्रेम के नशे में डुबो गया। इसी कारण जब तीसरी बार शत्रु ने उसके देश पर हमला किया तो वह सेना में भर्ती हो गया। उस के अन्तरमन में बदला लेने की जो चिंगारी सुलग रही थी वह ज़रा सी हवा मिलते ही भड़क उठी, और फिर इसी भावना से काम करने के कारण वह अपने साथियों में श्रेष्ठ गिना जाने लगा।

युद्ध के मैदान में उस ने प्रशंसनीय कार्य किए जिस से देश का सिर गर्व से ऊंचा उठा। आंधी की नाईं आक्रमण करने वाला शत्रु बगूले की तरह भाग खड़ा हुआ, शायद हमेशा के लिए क्योंकि इस बार उसे करारी मार पड़ी थी।

झोंपड़ी के बाहर आकाश अपना लावा फेंक रहा था, तारों की फटी पुरानी चादर बादलों के अंधेरे में गुम हो चुकी थी और अब जोरदार वर्षा में बिजली यों चमक रही थी जैसे कोई साया सूर्य के आगे से हो कर गुजर जाता है।

जब झोंपड़ी के अन्दर भी पानी आने लगा तो प्रेम ने अपना बंधा हुआ बिस्तर दूसरी ओर सरका लिया, और फिर एक नया सिग्रेट सुलगा कर विचारों में खो गया।

वह सोच रहा था कि जब से मैं सेना में भर्ती हुआ हूं तब से एक दिन के लिए भी छुट्टी पर नहीं गया, हालांकि मेरे साथी घर जाने के लिए प्राय: बेचैन रहते हैं। मुझे आफीसरों ने कितनी बार कहा भी था कि "तुम छुट्टी लेकर अपने घर क्यों नहीं जाते ?" मगर मैं उन्हें क्या उत्तर देता ? मैं कहां जाता ? किस को मेरा इन्तजार था ? और फिर मेरा घर ही कहां था ? — इन्हीं बातों को सोचते-सोचते और आफीसरों के बार-बार कहने पर मैंने अब छुट्टी ले ली। सोचा था — यह सारा देश ही मेरा घर है, चलूं, जरा अपने घर को ही घूम फिर कर देख लूं।

मगर अब इतना घूम चुकने के बाद समझ नहीं आती कि कितना और चलना है, कब और कहां पहुंच कर मुझे शान्ति मिलेगी ?

इन्हीं विचारों में डूबते-उतराते न जाने उसे कब निद्रा देवी ने अपनी सुखमय गोद में ले लिया।

जब वह जागा तो उस ने देखा कि दिन चढ़ चुका है। आकाश निर्मल था। बन के वृक्ष नहा-धो कर निखर चुके थे और वायुमंडल में सोंधी-सोंधी खुश्बू फैल रही थी। प्रेम ने एक भरपूर अंगड़ाई ली—बिस्तर को एक ओर करके, वह उसे बांध कर फिर अपने अनजाने सफर के लिए तैयार हो गया - लक्ष्यहीन और मंजिल से अनभिज्ञ !

उस दिन वह बराबर चलता रहा। वह कई गांव अपने पीछे छोड़ आया था दोपहर के समय वह एक गांव में कुछ दर के लिए रुका भी, पर खाना खाने के बाद फिर चलने लग गया था।

और अब साए लम्बे होते जा रहे थे वह फिर भी आगे बढ़ रहा था। संध्या के सुहाग की बिंदी चंद्रमा ने पोंछ डाली थी, घने जंगल में अथाह अंधेरा घुल रहा था, पर वह इन बातों से बेखबर आगे और आगे बढ़े जा रहा था।

आधी रात के करीब वह चलता चलता थक कर चूर हो गया, उस ने महसूस किया कि वह अब और अधिक देर तक नहीं चल सकेगा, मगर रुके भी तो कहां ? अभी थोड़ी देर पहले वह एक गांव को पीछे छोड़ आया था इसलिए दूसरे गांव तक पहुंचने के लिए उसे और चलना पड़ेगा। यह सोच कर उस ने जैसे स्वयं को घसीटना शुरु किया और फिर उसे यों लगा जैसे वह गिर पड़ेगा।

वह रुक गया, उसने चारों ओर नज़र दौड़ाई। कुछ ही दूर उसे एक गांव दिखाई दिया—और दूसरी ओर गांव से इधर एक टूटा फूटा घर भी जो घर कम और घर का अवशेष अधिक था।

प्रेम ने उसी घर पर पहुंच कर दरवाज़ा खटखटाया।

अन्दर से ममता में डूबी आवाज़ आई—"आई बेटा आई।"

प्रेम को यों लगा जैसे इस आवाज़ में न केवल अमृत घुला हुआ है बल्कि वह जन्म-जन्म से इसी आवाज़ को सुनने के लिए तरसता रहा है।

कुछ क्षणों पश्चात दरवाजा खुला और एक बूढ़ी औरत ने प्रेम को अपनी बाहों में भर लिया।

"मेरा बेटा—मेरा राजा बेटा—लोग यों ही कहते थे कि मेरा बेटा अब नहीं रहा—मुझे विश्वास था कि मेरा बेटा एक न एक दिन जरूर आएगा—आखिर तू आ ही गया बेटा।"

बुढ़िया बोलती जा रही थी और उस की आवाज़ धीरे-धीरे खुशियों के समुद्र में डूब रही थी उसकी आंखों से आंसू बह रहे थे उसने कई बार प्रेम के माथे को चूमा—और फिर उसे अपने साथ दालान में ले गई जहां एक दीये की धीमी सी रोशनी अंधेरे को दूर करने का प्रयास कर रही थी।

बुढ़िया ने दीये की रोशनी को तेज किया और फिर प्रेम के मुंह की ओर बड़े ध्यान से देखने के बाद बोली—"मगर तुम प्रकाश नहीं हो। उफ! मुझ से कितनी भूल हो गई।"

फिर वह स्वयं ही प्रेम को बताने लगी—"प्रकाश फौज में भर्ती हो गया था—वह भी अपने पिता की तरह बड़ा साहसी और बहादुर था, उस ने धरती मां की लाज बचाने के लिए दुश्मन के दांत खट्टे कर दिए थे। फिर एक दिन गांव में यह खबर पहुंची कि "प्रकाश नहीं रहा।" लोग मेरे पास सहानुभूति प्रकट करने को पहुंचे। पर मैंने उन्हें साफ कह दिया कि मेरा प्रकाश जीवित है वह दुश्मन की कैद में होगा और एक दिन जरूर मेरे पास आएगा—तब से आज तक मैंने प्रकाश को जीवित ही समझा। लोगों के घरों में मेहनत मजदूरी करके मैंने उस की बहू के लिए कपड़े और एक दो गहने भी बनवाए। पर अब ... ..."

प्रेम ने बुढ़िया को धीर बंधाते-बंधाते उसे अपनी कहानी भी सुना दी। फिर बोला—

"मां! इस संसार में बहुत कुछ होता है और उस बहुत कुछ के सम्बन्ध में

विस्तार से कहना किसी के बस का नहीं है। मुझे ही देखो, भाग्य ने मेरे साथ क्या कुछ नहीं किया, पर, मैं भाग्य के हाथों बे-बस नहीं हुआ मैं भाग्य की विडम्बना पर जोर-जोर से हसा हूं। इस दुनियां में सब से बड़ी मुश्किल यही है मां कि हम जो कुछ चाहते हैं वह कुछ नहीं होता और जो कुछ हम नहीं चाहते वह हो जाता है, इसलिए जो कुछ भी हो जाए उसी को अच्छा समझना चाहिए। जीवन के इस सफर में जिसका जितनी भी देर साथ मिले उन क्षणों को हम सुन्दरतम बना सकें तो सफर आसानी से कट जाता है।"

यों प्रेम और बुढ़िया अपने दुखों को पागलों की नाईं सुना करके आपस में बांटने लगे।

प्रेम ने फिर कहा—"मां ! तुम ही मेरी मां हो और मैं तुम्हारे लिए जीवित रहूंगा मां। तुम्हारी सेवा मेरे लिए भक्ति का दर्जा रखेगी तुम्हारी मौजूदगी मुझे दुनिया की अंधी गुफाओं और भयानक रास्तों में सुरक्षित रखेगी, तुम्हारे चरणों तले मेरे लिए अमृत के चश्मे फूटते रहेंगे मां।"

यह कह कर प्रेम ने बड़े भक्ति भाव से बुढ़िया के चरण छूए और बूढ़ी ने उसे गले से लगाते हुए कहा—" मेरा बेटा—मेरा राजा बेटा !"

वायुमंडल में यों महसूस हो रहा था जैसे कोई कह रहा हो कि - ऐसे भी पथिक होते हैं जिन का कोई लक्ष्य नहीं होता, कोई मंजिल नहीं होती मगर उन को मंजिल के दूर होने का एहसास ही कभी-कभी मजिल के निकट ले जाता है और तब वे अपने लक्ष्य को पा लेते हैं।

श्याम नारायण राय

※

मानसर[1]

चीड़ों से विविध द्रुमकुञ्ज-लतापुञ्जों से,
आम्र-अमराइयों से परितः घिरा हुआ।
विविध कमनीय गिरिशृंगमेखला से बधा,
देखने पाताल मानो धरा में वसा हुआ।
कमल कुलों से आच्छादित, जलविहगों से
कूंजित औ' मत्स्यों से अतिशय भरा हुआ।
चांद - घन - सूरज - सितारों का दर्पण यह,
मानसर नाम तो योंहि पड़ा हुआ॥

चंचल लहरियों पै किरणें किलोल करें,
खेल वीचियों से खगवृन्द उड़ जाते हैं।
शीतल सुवारि में सुदीर्घ स्नान करने से,
शिखर समूह कांपते ही दृष्टि आते हैं।
थिरकती मछलियों की क्रीड़ा की कहे कौन,
देख रसिकों के मन तृप्ति नहीं पाते हैं।
चीड़-प्रतिबिम्ब ज्यों फण फैलाए नाग,
सर-सुधा रक्षा हित घेरे लहराते हैं॥

जीर्ण देवालय क्रीड़ास्थल सुरम्योद्यान,
सर के समीप बने मन को लुभाते हैं।
पथिक - निवास भोजनालय जलपान - गृह,
श्रांत पर्यटकों की सुविधा बढ़ाते हैं।
प्रकृति के प्रेमी प्रेमी युगल परस्पर के,
चिर संचित सपनों को सत्य कर पाते हैं।
घुटन भरे जीवन से अब मनशान्ति हेतु,
सुन्दर सरोवर मानसर सब आते हैं॥

---

1 जम्मू नगर से लगभग 45 किलोमीटर की दूरी पर स्थित एक रमणीय झील।

ले० राज भल्ला

※

यादों की परछाईयां

अक्सर मेरे घर के लोग मुझसे नाराज रहते। 'कोई ऐसी जगह है जहां आप का जाना नहीं होता भाबो जी ! फिर सलीमा बी हमारी लगती ही क्या हैं ?'

कोई जवाब नहीं। इस तरह वे मुझ से नाराज़ थे और मैं उन से।

याद है जब कभी गई तभी बड़े चाव से सलीमा बी मुझे बैठने को कहतीं, सलीके से पेश आतीं और मैं भी उसकी तबीयत से परिचित, एक घण्टे से कम तो कभी बैठी ही नहीं। छोटी-छोटी बातें, पर कितनी मजेदार हुआ करती थीं।

मुझे पुन्छ छोड़े भी तो एक अरसा हो चुका है। सच ही छोड़ दिया ?

हां छोड़ दिया है। कई कारणों से। पर इधर आकर भी मेरा कोई खास वाकिफ नहीं बन सका। दरअसल वहां की यादें मुझे किसी को अपना बनाने ही नहीं देतीं।

कल ही तो नादिरा मिली। बात चीत के दौरान सलीमा की याद ताज़ा हो गई। पूछा तो बोली—'कौन सलीमा ? कुछ भी तो याद नहीं रहा।'

अस्पताल के पास कामसर जाने वाली सड़क पर जिसकी छोटी सी झुग्गी होती। बाहिर दीवार पर उपले और भीतरी दीवार पर घर की मामूली पर

बड़ी ही कारगर चीजें चिमटा, छुरी, और मिट्टी के तेल की चिमनी। कितना पक्का पता, पर सब कुछ भूलते सुनकर हैरान सी हो गई हूं।

'हैरान क्यों हो गई भाबो जी। मर, खप गई होगी आप भी तो कैसों कैसों के लिए इन्कवायरी कर रही हैं'—नादिरा ने हंसते हुए कहा।

इन्हीं मुरदों की इन्कवायरी के जुर्म में घर वाले मुझ से नाराज रहते हैं। उनका कहना है मुरदों की याद में भला दूसरा कोई कितना जिंदा रहता होगा।

खैर जो भी हो सलीमा अम्मा मुझ से भुलाई न जा सकेगी क्योंकि उसे मैंने याद किया नहीं था बल्कि वह खुद ही याद हो आई थी मुझे; तब, जब उम्र में छोटी होने पर भी मुझे उसने आप्पा जी बुलाना शुरु किया था। मैंने कई बार अपनी, इस शब्द से, चिढ़ भी व्यक्त की पर वह कहती—'आप को क्या है आप्पा जी जब मुझे बुलाने में मजा आता हो तो...?'

कितना भोला और निःस्वार्थ तर्क था उसका! है कोई वितर्क जो इसके सामने ठहर सके?

सलीमा विधवा थी। बड़ी जवानी में ही हाजी और सोना बी को जन्म देकर हसन चाचा बमविस्फोट से मर गया था। बुरा हो इन पाकिस्तानियों का जो किसी को नहीं छोड़ते। इनके जगह जगह दबाए गए बम वक्त, बेवक्त रंग दिखा ही देते हैं; फिर चाहे कोई हसन चाचा हो या रामू काका! जमीन में यह सोचकर कार्यवाही कर दी जाती है कि कोई तो मरेगा।

खैर इस दुर्घटना के समय मैं दिल्ली में थी। एक कार्य विशेष से मुझे गोल मार्केट के पास लारेन्स स्क्वेयर में किराये पर रहना पड़ा। इधर मुझे कम ही लोग मिलने आते, शायद पुन्छ का तो कोई भी नहीं। इस तरह लिखने, पढ़ने का मेरा काम चल पड़ा पर जबरन मिले एकान्त के प्रति मेरा विद्रोह कभी कभी जाग पड़ता और मैं सोचने लगती—'अच्छे हैं बड़े शहर! कोई किसी के पास आता नहीं! तो क्या इस महा नगरी में किसी को किसी से मिलने का सच ही अवकाश नहीं?'

अपने वहां तो याद है जब बच्चे की बांह टूटी तो इसी दिल्ली से इलाज करवा के छः मास बाद लौटी तो सब इस तरह हाल चाल पूछने आ गए जैसे आज ही घटना घटी हो। फिर कैसे मुझे एकदम दिल्ली अच्छी लगती, बेशक कई शौक मेरे इस दिल्ली में पूरे हो सकेंगे, तो भी ......!

अब वैसे लोग तो नहीं, हां छोड़े हुए शहर के लोगों के खत मुझे मिलते रहते। चार मास का समय ही तो बीता है, छः खत आ चुके हैं शिवां, निम्मू वाला चुन्नू, बड़ा आढ़ती और जलाला जो हमारे घर माल ढोने का काम करता था सब मर चुके हैं। दो और, जिनको नाम से नहीं, फेस टु फेस जानती हूं। वे भी मर गए! अब तो फेस टु फेस का सवाल ही नहीं! वैसे जब से इस महानगरी में आई हूं सब कुछ फेप टु फेस है। नाम, धाम का पचड़ा यहां कोई नहीं। होना भी नहीं चाहिए! कौन वक्त-बेवक्त किसी के लिए मरता, खपता रहे? इतनी गहरी दोस्ती की इधर जरूरत भी तो नहीं। अकेला मुर्दा श्मशान पहुंच जाता है। अकेला और अपरिचित आदमी हस्पताल न सही घूमता घुमाता थाने तो पहुंच ही जाता है। यह है इधर की व्यस्त जिन्दगी! व्यस्त या फिर अस्त व्यस्त, कुछ कह लो!

जब कोई इस तरह का मातमी खत आता तो ध्यान एकदम सलीमा की ओर चला जाता।

इतने बड़े शहर में मेरे तीन ही अच्छे जान पहचान वाले बन सके हैं। अपनी मेहतरानी गुलशन, दोधिया रामरक्खा और धोबी नूरू। कोई भी तो अपनी बात-बिरादरी का नहीं। जबरन एकान्त की तरह जबरन ही इनसे इन्टरनेशनल सम्बन्ध जुड़ गए हैं! पर ये मुझे वैसा तो नहीं चाह सकते जितना डुंगस, कामसर मोती महल या फिर पडितों के मुहल्ले में रहने वाले अपने लोग।

महीने के बाद --'तनख्वाह दो बीवी जी!' बस इतना ही तो सम्बन्ध है उनका और मेरा।

जब कभी ये त्रिमूर्ति इकट्ठी ही घर आ जाती तो सोचती एक और आ जाता तो हर्ज ही क्या होता! शायद सलीमा अम्मा का प्यार उस समय मुझे अपनी ओर आकृष्ट कर रहा होता था।

खैर.........! सलीमा तो नहीं, उसके मरने का खत आज मुझे मिला है। खत बड़े बेटे हाजी का लिखा हुआ है शायद। पुन्छ से चली तो छोटा था पर कहने लगा -'भाबो जी! कभी अपने पास बुलाना, अम्मा तो आप के बिना न रह सकेंगी।'

मैंने भी अपनत्व प्रकट करते हुए कहा--'काजी! चले आना न! जब मर्जी हो।' फिर दिल्ली आकर काफी इन्तजार की पर मेरे सिवा किसी ने भी दिल्ली आना पसन्द न किया। मुझे पढ़ाई, लिखाई का शौक था इस लिए दिल्ली अच्छी नहीं तो बुरी भी नहीं लगी, बेशक कई प्रकार का कसैलापन बर्दाश्त करना पड़ा! और वे ज्ञान

से अधिक प्यार के भूखे थे इसलिए बम बरसें या गोलियां वे लोग अपने बाप-दादा की हवेलियों से और अपनी बनाई झुग्गियों से हिलने के नहीं।

खत पढ़ा, जी चाहा उड़ कर पहुंचूं। पर कैसे? फिर याद आया जब मैंने बार-बार कहा था—'अम्मा! चलो न दिल्ली। पढ़ा लिखा कर बच्चों को ठिकाने लगा दूंगी।' कितना बड़ा प्रलोभन था यह, पर चुप-चुप सुनने के सिवा कुछ भी तो नही बोली।

फिर बार-बार मेरे कहने पर सलीमा बोली—'आप्पा जी! क्या करोगी हमें वहां ले जाकर? इधर ठण्डा पानी तो पीते हैं। सुना है वहां पानी भी कीमतन मिलता है! किसी से खुल कर बात तो करते हैं, बिना मजबूरियों के सिवा भी, दम तो नहीं घुटता रहता यहां।'

शायद उसने सुन रखा था कि लोग आपस में बिना मतलब बोलते तक नहीं, बेशक बकवास में घन्टों तोड़ दें!

ओह! तो क्या यह नालेज, यह ज्ञान इतना घमण्ड बन चुका है कि किसी से बोल ही नहीं सकता? किसी के पास चल कर जा नहीं सकता? किसी की कुछ सुन नहीं सकता? तो फिर इस गूंगे, बहरे और लंगड़े ज्ञान से अज्ञान हजार दर्जे बेहतर है। ठीक ही तो कह रही थी—'कि आप्पा जी! हम गरीबों को यही ठीक है कि प्यार दें और थोड़ा सा लें भी। दिल के खजाने बंद करके बेशकीमती उपहार देने की धृष्टता हम नहीं कर सकते आप्पा जी!'

यही ठण्डा पानी, यही मक्की की रोटी और यही अपनी झुग्गी, ठीक है।

आज उस की याद तो मेरे दिल में जिन्दा है पर वह बेचारी मर गई है! दिल्ली आने के थोड़े दिनों बाद ही तो खत आ गया। उस का उदास चेहरा बार-बार कुछ कह रहा था, पर मुझ से समझने में भूल हुई। आखिर बड़े शहर का रंग असर ला रहा था, भला इतनी जल्दी कैसे उसे समझ पाती! पुन्छ और दिल्ली का अन्तर भी तो बड़ा है, पूरे दो दिन लगते हैं आजकल भी!

खत तो बहुतों के आए पर अम्मा सलीमा के खत ने मुझे एक दम बेचैन कर दिया। कुछ छोटी-छोटी बातें बहुत बड़ी-बड़ी बन कर सामने आ गईं! हमउम्र न होने पर भी वह मुझे प्यार से अपनी छोटी-छोटी बातें तक बताती। अभी पिछली बार मिली तो निकाह के वक्त का दुपट्टा दिखाने लगी और साथ ही हसन चाचे की पगड़ी भी। मैंने छूटते ही पूछा—'अम्मा! मरे हुए लोगों की चीज़ों से डर नहीं लगता? क्यों इतना सम्भाल कर रखती हो?'

कुछ देर के लिए हम दोनों चुप हो गईं। फिर चुप्पी को भंग करते हुए वह कहने लगी—'आप्पा जी ! चुप क्यों हो गईं ? मुझे डर न तो मरे हुओं से लगता है और न उनकी चीज़ों से।' इतना कह कर उसने सोनावी को उस टीन को पास लाने को कहा जिस में दो चार कपड़े और हसन चाचे का एक फोटो था।

देखते ही याद आ गया गीता-भवन जाते बाज़ार दड़ूनी में एक छोटी सी दुकान का मालिक चाचा हसन। हिन्दुओं के साथ हिन्दु और मुसलमानों के साथ मुसलमान ! और फिर, इन दोनों से परे एक सच्चा इन्सान जो हिन्दु या मुसलमान बनने के पहले इस छोटे से शहर में लगभग पूरा इन्सान बन चुका था और मुझे ऐसा सब करने के लिए बड़े शहर आना पड़ा। अपनी इस भूल पर कभी हंसी आती तो कभी पश्चाताप भी होता।

रात काफी हो चुकी थी। मैंने घर जाने की सोची। 'अच्छा अम्मा जाऊं न ?'

'आप्पा जी ! बैठ भी जाओ न। कितनी देर बाद तो आई हो ! छोड़ आऊंगी। घर कौन सा दूर है ! फिर बूढ़ी को अन्धेरा क्या कहेगा ?'

सभी बातों का प्रतिवाद करने की बुद्धि मुझ में है पर अपनी चुनरी को पकड़ कर की गई एक छोटी सी याचना ने सच ही मेरी प्रतिवादी बुद्धि को हतप्रभ सा कर दिया।

मैं बैठ गई, यह सोच कर कि जब तलक यह न कहेगी बैठी रहूंगी।

मुझे भरोसे से बैठा देख कर अम्मा हसन चाचे का एक ग्रुप फोटो दिखाते हुए बोली—'बड़े अच्छे थे ये सब।'

मैंने मज़ाक में कहा—'अम्मा ! कब्रगाह तो नहीं है तुम्हारा दिल ! किसी ज़िन्दा इन्सान का भी फोटो दिखाओ।'

'आप्पा जी ! इन्सान तो बहुत देर के खत्म हो चुके हैं—अब तो रुलदु-खुलदु माल है !' न जाने सलीमा कितनी देर अपनी बात जारी रखती पर मैंने बीच ही में कहना शुरू कर दिया—'अच्छा ! अम्मा की निगाह में इन्सान सारे ही खत्म हो चुके हैं ! बड़े मार्के की बात कही है।'

'सच ही तो कहती हूं आपा जी ! इन्सान होते तो यह रोज़-रोज़ हिन्दु मुसलमान के झगड़े होते ?' अम्मा की दूरदर्शिता ने मुझे दग कर दिया। कितने इतमीनान से कह रही है कि इन्सान खत्म हो चुके हैं।

पर बेचारी को इन्सान के खात्मे का इतिहास ज्ञात नहीं है शायद ! पता

करवाने का मेरा कोई इरादा भी नहीं। हम बड़े शहर वाले इस किस्से को अच्छी तरह समझते हैं।

एकाएक मुझे चुप सा देख कर सलीमा ने कहा—'आपा जी ! चुप क्यों हो गईं ?'

मैंने भी शरारत भरे लहज़े में कहा—'मुझे आपा जी जो कहती हो इस लिए।'

मेरी रुठाई उसे तनिक भी सह्य नहीं। इस लिए शायद जल्दी ही कहने लगी—'आप्पा जी मेरे मुंह पर चढ़ गया है बेटी ! अच्छा कहो न कुछ।'

उसे क्या बताऊं इन्सान कैसे खत्म होता है।

भोली अम्मा क्या समझे इस सियासत को ?

'बस ये सियासत वाले ही तो हैं जो इन्सान और इन्सानियत को खत्म करने पर तुले हुए हैं ! वे दरअसल नहीं चाहते कि हिन्दु या मुसलमान होने से पहले हर कोई इन्सान हो। भला इन्सानों में सियासत का काम भी क्या ? वह तो पनपती ही दुरंगी चालों में है।' बस इतना कहते-कहते मुझे फिर हसन चाचा याद आ गया।

क्या वक्त था— जब वह मुझे मुहल्ले की बहु बेटी समझ कर कुछ कदम पीछे हट कर बात करता। बड़े ढंग से पीठ पर थपथपी देता और फिर मुझे भी सरे बाज़ार उसके कदम छूने में बुरा नहीं लगता। क्योंकि वह सियासत का मारा नहीं, अपना प्यारा हसन चाचा था। एक सच्चा इन्सान।

पर कहां है ? दीखता तो नहीं। सच ही तो सलीमा कहती थी कि इन्सान मरते जा रहे हैं। इन चार महीनों के खत भी तो उन्हीं के बारे में थे जो इस लाग-लपेट के परे के इन्सान थे।

खैर...अब मैं बिना बताए ही समझ गई हूं कि क्यों उसे मरे हुए लोगों से और उनकी चीज़ों से प्यार है। डर और नफ़रत तो सियासत वालों ने पैदा की है। नहीं तो भला इन्सान को इन्सान से डर ? हद हो गई !

भगवत्प्रसाद साठे

डोगरी लोक कथा में मनोवैज्ञानिक तत्व 'शौर्य और न्याय'

एक बार बूंदा-बांदी हो रही थी। संध्या ने काली चादर ओढ़ ली थी। घर के सब लोग अंगीठी के चारों ओर बैठे सन निकाल रहे थे। रस्सियां निकाल कर छड़ियां आग में डालते जा रहे थे। आग भड़क रही थी, लपटें निकल रही थीं। हम सब लोग पिता जी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे जब तक न आएं, खाना नहीं खाया जाता था। ताई जी कहने लगीं— 'लो तुम्हें एक 'कत्थ' सुनाऊं।' मैंने कहा, "नहीं; तुम रोज़ किसी चिड़िया, गीदड़ अथवा किसी अन्धे भिखमंगे की कथा सुनाया करती हो। आज यदि पिता जी के साथ मामा जी आ जायें तो इस जाड़े में उन से कोई बढ़िया 'कत्थ' सुनी जाए।"

मेरी माता ने कहा— 'वह मालिया देने के लिये आया था चला गया होगा, आज इन्हीं से सुन लो।'

मैं मान नहीं रहा था, ताई सुनाने के लिये जिद्द कर रही थीं। इतने ही में किसी के जूतों की खड़खड़ की आवाज़ सुनाई दी। आगे-आगे पिताजी उन के पीछे उन का अर्दली और दो व्यक्ति और। उन में एक मामा जी भी थे जो वर्षा के कारण घर नहीं जा सके थे। बस फिर क्या था, सब के मन की मुराद पूरी हो गई— आज बड़े जोर की कत्थ सुनी जायेगी। मामा जी ने भी दूर से ही जोर से कह दिया, 'आज नई कत्थ सुनायेंगे।'

पहले पुरुषों ने भोजन किया। क्योंकि हम बालक पुरुषों में शामिल हैं इस लिये

हम ने भी भोजन कर लिया। परन्तु घर का महिला-वर्ग रसोई घर में भोजन करते कत्थ सुनने के ग्रानन्द से वंचित रह जाता, इस लिये अपनी थालियां लेकर अंगीठी के पास ही ग्रा कर बैठ गया। वृद्धाग्रों ने थालियां सामने रख लीं। बहुग्रों ने घूंघट निकाल कर दूसरी ग्रोर मुंह कर लिया ग्रौर लड़कियां हमारे साथ कन्धे से कन्धा भिड़ा कर बैठ गईं। खाना खाने लगीं, कत्थ सुनने लगीं। कुछ हमारे 'कास्मे' थे वे भी अपनी-अपनी मिट्टी की अंगीठियां उठा कर सामने बरामदे में बैठ गए। मामा जी बोले—

'एक था राजा ग्रौर एक था वजीर।'

मैं बोल उठा—'वाह, यह होती है कत्थ। जिसको जितनी पहुंच हो वह उतनी ही ऊंची बात सुनाता है। हमारी ताई तो चिड़िया ग्रौर गीदड़ों का ही लोहा मानती हैं। देखा, राज दरबार में जाने वाले मामा जी राजाग्रों की बात करते हैं। हां तो मामा जी उन दोनों के हम सरीखे बालक भी होंगे?'

'हां, हुए। दोनों के घर एक-एक ग्रौर वह भी एक ही दिन। पहले उन के यहां सन्तान नहीं होती थी तो उन्होंने एक ऋषि की बड़ी सेवा की थी। ऋषि ने प्रसन्न होकर वर दिया था कि जाग्रो तुम्हारे यहां एक-एक प्रतापी बालक पैदा होगा ग्रौर वह हुग्रा।'

कत्थ हो रही थी। मामा जी के लिये अंगीठी में ही चाय रख दी गई। चाय तो बड़ी 'खातिर' गिनी जाती थी। दूध के बड़े गिलास में चाय, खाड, इलायची, दालचीनी उबाल ली जाती। चाय उबल कर तैयार हो गई, तो मामा जी चुस्कियां ले-ले कर पीने लगे।

'वे बालक क्या हुए, नगर भर की चुप्पी टूट गई। लोग नाचते गाते राजा ग्रौर वज़ीर के यहां बधाइयां देने पहुंचे। राजा का महल जैसे नव-विवाहिता बहू की तरह सजा हुग्रा था। कई प्रकार की दीप-मालाएं ग्रौर ग्रातिशबाजियां धरती से ग्राकाश का विवाह करवा रही थीं।'

मामा जी कथा सुना रहे थे ग्रौर हमारा मन जैसे ग्रातिशबाजियों के साथ धरती ग्रौर ग्राकाश के विवाह में बाराती बन कर उड़ रहा था। महल की दीपमाला हमारे मन में दीपावली के दीपक जला रही थी ग्रौर राजा तथा वजीर की ग्रोर से कई तरह की मिठाइयां बांटने की बात ने तो हमारे मुंह में गुलाबजामुन भर दिये ग्रौर हम वाह-वाह कर उठे।

मामा जी कह रहे थे—'ग्रौर जब वे दोनों बालक कुछ बड़े हुए तो पढ़ने लिखने के साथ-साथ उन्हें धनुषबाण चलाने की शिक्षा भी दी गई। ग्रब तो राजा वजीर के बेटे को भी अपना ही बेटा मानने लगा था।'

हम ने पूछा 'तब वे बालक महलों के अन्दर कैदी की तरह रहते होंगे ।'

मामा जी बोले—'नहीं, वे शहर में आते थे तो पानी भर कर आने वाली नागरिक महिलाओं के घडों को अपने तीरों का निशाना बनाते थे ।'

हम ने दुःखी होकर कहा—'तब तो घड़े फूट जाते होंगे, पानी बह जाता होगा और महिलाएं सिर से पैर तक भीग जाती होंगी ।'

'हां । लोग तंग आ कर एक दिन राजा के पास गये । राजा ने उन्हें सान्त्वना दी और एक-एक पीतल की गागर सब को मुफ्त भेंट कर दी ।'

हम डूबते-डूबते फिर तैरने लगे—'वाह तब तो लोगों को मजा हो गया ।'

'लेकिन बालकों ने गागरों का भी वही हाल कर दिया ।'

हम फिर दुःखी होकर डूबने लगे—'ऐसे दुष्टों को तो दण्ड मिलना चाहिये था ।'

'हां, दण्ड ही मिला, और कड़ा दण्ड मिला । उन्हें नगर से बाहर निकाल दिया गया—नदी के पार एक बाग में उनका डेरा डाला गया ।'

कथ्य हमारे मन के उतार-चढ़ाव के साथ मेल खाती हुई गतिशील हो रही थी । आधुनिक कहानीकार की कलम यहां रुक जाती । वह राजा को अपने प्यारे बेटों को दण्ड देने से अपनी कलम को रोक देता । समझता यह प्राकृतिक नहीं है, कृत्रिम है । वह कई प्रकार के बहाने बना कर कुमारों को दूसरी जगह भेज देता । वह हमारे मन के भावों की परवाह न करता । अपने मन के उतार-चढ़ाव को भी वह न समझता । वह प्राकृतिक को कृत्रिम बनाता और कृत्रिम को प्राकृतिक । इस पर अपने श्रोताओं और पाठकों को अपने लिखे हुए पर विश्वास करने के लिये बिवश करता और कहता कि जैसा उस ने लिखा है वैसा ही ब्रह्म भी लिखता, विष्णु भी मानता और शिव भी कहता ।

मामा जी ने कहा—'लेकिन वे नदी पार करके भी शहर में आने लगे और गागरें तोड़ने का मजा लेने लगे ।'

'उफ ! तब तो बड़ा अनर्थ हुआ ।' अब हमारे मन के भाव स्थिर हो गये । अब उन से क्या व्यवहार किया जाये, हमारा छोटा सा मन निर्णय नहीं कर पाया । हम भूल-भुलैयों में पड़ गये । वहां बैठे हमारे घर के दूसरे लोग भी हतप्रभ रह गये । तब मामा जी ने चाय की दो चार चुस्कियां लेकर कहा—

राजा ने उन को मरवा डालने के लिये मस्त हाथी भेजा ।'

अब क्या होगा ? हमारा मन दुष्टों के प्रति भी कभी - कभी

सहानुभूति से भर उठता है। हम यह बात किसी सूरत में नहीं चाहते थे कि उद्दण्डता का दण्ड इतना भयंकर हो कि हाथी उन बालकों को मार ही डाले। मस्त हाथी तो काल है और काल से बचना ... — ...।

तभी मामा जी ने हमारे मन का साथ दिया।

'बालकों ने हाथी पर बाणवर्षा करके उसे मार डाला।'

चलो अच्छा हुआ। हमारे मन का बोझ उतर गया। हम हल्के हो गये। परन्तु फिर क्या हुआ......फिर वही गागर-तोड़ धन्धा। यह तो ... ...।

मामा कहने लगे—'फिर वे वहां नहीं टिके, तुरन्त चले गये। राजा ने अपने बहादुर कुमारों का कारनामा सुना तो दंग रह गया और उन्हें ढूंढने के लिये दूत भेजे, परन्तु उन का कोई पता नहीं मिला, वे लापता हो गये थे।'

'बस इतनी सी बात पर? कहां गये वे? कोई पता नहीं चला?'

हम आगे बढ़ना चाहते थे। कुमारों के साथ चलना चाहते थे। यहीं रुकने के लिये हमारा मन नहीं मान रहा था।

'दोनों कुमार जंगल में आगे ही आगे बढ़ रहे थे। आगे उन्हें एक लकड़ी काटने वाला मिला, जिसने लकड़ियां काट-काट कर बहुत बड़ा ढेर लगा रखा था, परन्तु अभी उसके उठाने योग्य बोझ नहीं बना था। कुमारों के साथ बात-चीत होने पर वह उन्हीं के साथ चल पड़ा। दो आदमी और मिले। एक की एक आंख थी परन्तु वह उसी के साथ मीलों पर पड़ी चीज़ को देख लेता था। दूसरे की बड़ी-बड़ी टांगें थीं और वह मिनटों में मीलों दूर चला जाता था। एक साधु भी उनके साथ हो लिया जो शत्रुओं के पूरे समूह को निगल जाता था। इन सब के बल पर उन्होंने कई नगरों से मिठाइयां मंगवा कर खाईं और राजाओं ने उन्हें दण्ड देने के लिये पकड़वाना चाहा, यहां तक कि तोप के गोले भी इन पर छोड़े गए पर इन लोगों ने राजाओं को पराजित कर दिया और एक एक कर के सब के विवाह पराजित राजाओं की राजकुमारियों के साथ हो गये, केवल राजकुमार अविवाहित रहा।'

हम ने आश्चर्य से पूछा, राजकुमार ने विवाह क्यों नहीं किया?'

'उसने भी किया। उसने समुद्र के किनारे पर एक बहुत बड़े नाग की कैद में फंसी हुई सोने के बालों वाली राजकुमारी के साथ विवाह किया। विवाह से पहले उसने नाग को मार डाला।'

'फिर क्या हुआ। वे लोग लौट आए या वहीं रह गये?'

'लौट आए। अपनी-अपनी बहुओं को लेकर शेष लोग अपने-अपने ठिकानों को

चले गये। दोनों कुमार आकर उसी बाग में ठहरे जहां से वे हाथी को मार कर चले गये थे। राजा उनके साथ लाव-लश्कर देख कर डर गया परन्तु जब उसे मालूम हुआ कि उसके अपने बेटे लौट आए हैं तो सारे नगर में फिर से वैसी खुशियां मनाई गईं जैसी कि उनके जन्म पर मनाई गई थीं। अब वे कुमार अपनी प्रजा के सुख में सुख और दुःख में दुःख मानने लगे।'

आज मैं समझता हूं हमारी इन कथाओं में शौर्य और न्याय के तत्व संस्कारों के रूप में विद्यमान हैं। राजा न्याय करने पर तुला हुआ था, और अबोध बालक उद्दण्डता करते थे। बाहर निकल कर जब उन्होंने दुनियां देखी और वहां अपना शौर्य दिखलाया तो शौर्य और अनुभव से न्याय और आचरण पैदा हुए। डोगरों में शौर्य और न्याय की परम्परा है और वही परम्परा इन लोक कथाओं का भी मुख्य आधार है।

रमा शर्मा

*

याचना

रोती हूं पर तुम रोने पर
मेरे ध्यान न लाना नाथ !
कहीं भूल कर प्रेम विवश हो
द्वार न मेरे आना नाथ !

आने पर हा ! रूठ न जाएं
सुखद प्रतीक्षा की घड़ियां
भय लगता है टूट न जाएं
अश्रु मोतियों की लड़ियां।

प्रिय वियोग की छाया में ही
माला प्रेम पिरोने दो
जीवन धन ! जीवन भर मुझ को
विरही बन कर रोने दो।
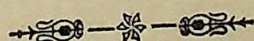
आपकी बात

सितम्बर व दिसम्बर 1973 अंक

※ दोनों अंक आपके सुरुचिपूर्ण सम्पादन के द्योतक हैं। लेखों, कथाओं और कविताओं में वैविध्य है, स्तरीयता और एक दृष्टि है। नए हस्ताक्षरों की रचनाओं में आत्मविश्वास और निर्भीकता है। उनकी रचनाएं पढ़ कर कहा जा सकता है कि जम्मू-कश्मीर में हिन्दी का वातावरण भी बन कर रहेगा।

वेद राही

बी, 35, सर्वोत्तम हाउसिंग सोसाइटी, इरला ब्रिज, अंधेरी, बम्बई 400058

मार्च 1974 अंक

※ शीराज़ा की नई सज्जा मनभावनी है। इस अंक की सामग्री के विषय में मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि वे उपादेय हैं। श्री अरविन्द की संक्षिप्त एवं प्रामाणिक जीवनी भी होती तो उत्तम रहता।

आशा है आपके सम्पादकत्व में शीराज़ा दिन प्रतिदिन विकास एवं उन्नति के चरण रखती हुई ख्याति-शिखर पर अवश्य पहुंचेगी।

डॉ० रमेश कुमार शर्मा

आचार्य एव अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

※ शीराज़ा का अंक मिला—धन्यवाद ! साफ-सुथरा, सुरुचिपूर्ण अरविंद विशेषांक अपने आप में एक उपलब्धि है जिसका सारा श्रेय आपको है। रचनाएं सभी उच्चस्तरीय हैं और अपनी बात महत्वपूर्ण...बधाई !

के० पी० सक्सेना

11, वजीरगंज, लखनऊ 226001

※ आप द्वारा सम्पादित अन्य अंकों की भांति 'अरविन्द विशेषांक' भी महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट है। अभी तक जितने भी लेख पढ़े, सुन्दर एवं ज्ञानवर्धक हैं। एक बात जो खटके बिना नहीं रही, चित्रों की रंगीन छपाई से सम्बन्धित है। कृपया इस ओर ध्यान दें।

अंक स्थायी महत्व का एवं संग्रहणीय है—यह औपचारिक वाक्य न भी लिखा जाए तो कोई अन्तर आने वाला नहीं। जो है, है। उससे इन्कार कौन कर सकता है। सत्प्रयास के लिए बधाई।

विनोद कुमार बज़ाज़

386, कोटली दर्स्ता, जम्मू

※ श्री अरविन्द के साहित्यिक व्यक्तित्व पर प्रामाणिक प्रकाश पड़ा है।

ध्रुव जायसवाल

टांडा, फैज़ाबाद (उ० प्र०)

※ प्रयास प्रशंस्य है। लेख स्तरीय, ज्ञानवर्द्धक हैं। यदि इस अंक में अरविन्द की रचनाओं के कुछ एक अंशों का भाषान्तर प्रस्तुत किया गया होता तो विशेषांक के गौरव में चार चांद लग जाते। शशिशेखर, शान्ता शर्मा तथा जगदीश प्रसाद द्विवेदी के लेख अच्छे लगे।

डॉ० निज़ामउद्दीन

इस्लामिया कालेज, श्रीनगर

※ यह विशेषांक मनीषी अरविन्द के सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व का एक निर्मल दर्पण बन गया है। अरविन्द के जीवन, दर्शन और साहित्य का इतना सुन्दर समीचीन और विद्वत्तापूर्ण विवेचन प्रस्तुत करने वाली स्तरीय रचनाओं को एक ही स्थान पर सकलित करके आपने एक महत्वपूर्ण और उपयोगी कार्य किया है। सुन्दर सम्पादन के लिए बधाई स्वीकारें। कुलभूषण की कहानी कुछ विशेष प्रभावित नहीं कर सकी। शशिशेखर तोषखानी, डॉ० शान्ता शर्मा और डॉ० देवराज बाली के विश्लेषणात्मक लेख अच्छे बन पड़े हैं।

जवाहर सिंह

राजकीय डी० एम० कालेज, इम्फाल (मणिपुर)

※ ...इतनी गम्भीर सामग्री को एक नजर में पढ़ जाना बहुत कठिन था। अब भी कई लेख मेरी अल्पमति की पकड़ में नहीं आ सके हैं। अरविंद दर्शन है भी

इतना गूढ़। फिर भी इतना तो कहना ही होगा कि अंक का अन्तरंग और बहिरंग दोनों समान रूप से आकर्षक बन पड़े हैं। कुलभूषण की कहानी बहुत अच्छी लगी।

मालती जोशी
105/12, दक्षिण टी० टी० नगर, भोपाल

⁕ श्री शशिशेखर तथा डॉ० ओम प्रकाश गुप्त के लेख बहुत ही जोरदार हैं। वैसे पूरी सामग्री सुन्दर एवं पठनीय है। अंक संग्रहणीय है। "पुस्तकें और पुस्तकें" में पुस्तकों की गम्भीर समीक्षा होनी चाहिए। प्रूफ की अशुद्धियां भी यत्र-तत्र अखरती हैं।

यही कामना है कि आप इससे भी बढ़िया अंक सम्पादित करते रहें।

पृथ्वी नाथ 'मधुप'
347—तेलीवाड़ा, शाहदरा, दिल्ली-32

⁕ अरविन्द विशेषांक की लगभग सभी रचनाएं स्तरीय लगीं। कविताओं में नीलम खोसला की कविता अच्छी लगी। कुलभूषण की कहानी जरूर पल्ले नहीं पड़ी। आप बधाई के पात्र हैं!

अंजनी चौहान
18, पोस्ट ग्रेजुएट मेडीकल हॉस्टल, रीवा (म० प्र०)
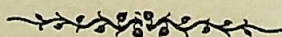
डायरी के पृष्ठ

※ आठ से दस अप्रेल 1974 तक अकादमी की ओर से स्थानीय रियास्ती कल्चरल संगम द्वारा आयोजित एक भव्य समारोह में चित्रकला एवं पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इस प्रदर्शनी का उद्घाटन अकादमी के अध्यक्ष सैयद मीर कासिम, मुख्य मंत्री, जम्मू-कश्मीर सरकार ने किया। इस में जम्मू-कश्मीर प्रदेश के चुने हुए चित्रकारों की कलाकृतियों के साथ अकादमी प्रकाशनों का भी प्रदर्शन किया गया। इसी अवसर पर अकादमी द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त कर प्रकाशित होने वाली पुस्तकें भी प्रदर्शित की गईं। समारोह में भाग लेने के लिए कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश से आए अनेक साहित्यकारों तथा कलाकारों ने इस प्रदर्शनी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की तथा इसके आयोजन के लिए अकादमी सचिव श्री मुहम्मद यूसुफ टेंग को बधाई दी।

※ जम्मू की जनता के मन-प्राण को मोह लेने वाले लोक-नाट्य 'जसमां' का 9 अप्रेल 1974 को 'जम्मू प्रदर्शनी स्थल' में एक बार फिर से सफल मंचन किया—अकादमी के नाट्य-निदेशक श्री कवि रत्न शर्मा ने। 5,000 से भी अधिक व्यक्तियों ने इस नाटक के प्रदर्शन को देखा। इस अवसर पर मुख्य अतिथि थे—अकादमी के उपाध्यक्ष, जम्मू-कश्मीर सरकार के वित्त मंत्री श्री गिरधारी लाल डोगरा।

※ दस अप्रेल 1974 को प्रदर्शनी स्थल में ही अकादमी की ओर से एक सांस्कृतिक संध्या का भी आयोजन किया गया। 3,000 से भी अधिक दर्शकों में प्रमुख थे जम्मू-कश्मीर प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री अयूब खान। सांस्कृतिक कार्यक्रम की सभी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

※ 15 अप्रेल 1974 को अकादमी के जम्मू कार्यालय के उपसचिव श्री जितेन्द्र

शर्मा के नेतृत्व में एक दल ने नई दिल्ली के मावलंकर हाल में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इस कार्यक्रम का आयोजन 'डोगरा हिमाचल संस्कृति संगम' की ओर से किया गया था। विशाल दर्शक समूह में प्रमुख थे केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री डा० कर्णसिंह तथा संसदीय मामलों के केन्द्रीय राज्य मंत्री श्री ओम मेहता। कार्यक्रम की सभी ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

※ 2 जून 1974 को भारतीय सेना के जवानों के मनोरंजन के लिए उधमपुर में अकादमी की ओर से एक रंगारंग कार्यक्रम का आयोजन किया गया। जवानों के अतिरिक्त अनेक सेना तथा सिविल अधिकारियों के साथ ले० जनरल पी० एस० भगत ने भी उक्त कार्यक्रम को देखा और इस की सराहना की।

※ 25 जून 1974 को उच्चतर माध्यमिक विद्यालय उधमपुर में अकादमी प्रकाशनों की एक प्रदर्शनी लगाई गई जिसे उक्त विद्यालय के छात्रों तथा अध्यापकों के अतिरिक्त उधमपुर के गणमान्य नागरिकों ने भी देखा।

※ 25 जून 1974 को ही उधमपुर में अकादमी की ओर से एक कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया जिस में सर्व श्री : विजय सुमन, प्रितपाल सिंह बेताब, परस राम पूर्बा, विश्न दास दुबे, दूनी चन्द शर्मा, मुन्शी राम शर्मा, प्रकाश प्रेमी, हेम राज चौधरी, आनन्दस्वरूप अन्जान, ओम प्रकाश कैलू, सतिन्दर नाथ चौधरी, हंस राज शर्मा, राम लाल गुप्ता, संसार चन्द चौधरी, नरेश कुमार, बाल कृष्ण भंवरा, जिया लाला जिया तथा प्रेम चन्द प्रेमी ने भाग लिया।
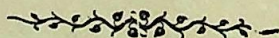
पुस्तकें और पुस्तकें

"नौका का इतिहास"[1] श्री सुतीक्ष्ण कुमार शर्मा आनन्दम का नवीनतम कविता-संग्रह है। आनन्दम, जम्मू के साहित्यिक क्षेत्र में, नई कविता के नाम पर नित नये प्रयोग करते रहने वाले कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। प्रस्तुत संग्रह के अस्सी पृष्ठों में संकलित इक्तीस कविताएं इस बात की पुष्टि करती हुई मिलेंगी।

आनन्दम की कविता प्रगतिशील कवि की कविता है। परन्तु उसकी कविता के विविध स्वर उसे एक परिवर्तनशील मनोवृत्ति का कवि भी घोषित करते हैं। "नौका का इतिहास" के प्रारम्भिक पृष्ठों में आनन्दम का कवि निराशा से आतंकित दिखाई देता है—

दूर दूर तक / कोई द्वीप नहीं / कोई संकेत नहीं।

समस्त सम्भावनाओं के चुक जाने पर ही किसी कवि के काव्य में निराशा का ऐसा स्वरूप चित्रित हो पाता है। परन्तु आनन्दम हर विसंगति के आगे एक प्रश्न चिन्ह जड़ देता है क्योंकि वह जानता है कि किसी भी समस्या का समाधान खोजने के लिए अपने से, समाज से, सभी से प्रश्न करने होते हैं—

... ... सब प्रश्न / बनते शेष प्रश्न / एक एक से जनमते / सौ सौ प्रश्न / और मनता है फिर : / प्रश्नों का जश्न !

'प्रश्नों का जश्न' मनाते-मनाते कवि उत्तर पाने को आतुर हो उठता है उसे डर है कि 'प्रश्न' और 'उत्तर' के बीच डोलने की स्थिति असंगतियों को उजागर करने में सहायक बनने से इंकार न कर दे ! यदि ऐसा हो गया तो फिर क्या होगा ?—

कैसे चिंतन होगा / कैसे सृजन होगा / कैसे सजेगी सृष्टि की दुल्हन / कैसे जीवन / सुख भोग सकेगा ?

---

1. पुस्तक का नाम : नौका का इतिहास
   कवि : सुतीक्ष्ण कुमार शर्मा आनन्दम
   प्रकाशक : साक्षर प्रकाशन, जम्मू
   पृष्ठ : अस्सी
   मूल्य : पांच रुपये

इस प्रकार कवि एक के बाद दूसरे प्रश्न का सामना करते हुए इन प्रश्नों के उत्तर ढूंढने की चेष्टा करता है तो उसके मन में आम आदमी को लेकर पनपने वाली व्याकुलता उसे भाव-विह्वल बना देती है और वह आम आदमी को उसकी पीड़ाओं से मुक्ति दिलाने के लिए स्वयं उसके संघर्ष का भागीदार बन जाता है। उसमें विश्वास का उदय होता है—

आयु आधी बीत गई / मंझधार में है उड़ान / साहिल छूट चुका है / आम के बौर पीछे रह गए / पर— / विश्वास अभी है शेष :

यही 'विश्वास' संकलन के मध्य भाग के पृष्ठों में पहुंचने तक कवि को आशावादी बना देता है और कवि में नई स्फूर्ति भर देता है—

ऊपर की सतह पिघलेगी / स्फूर्ति जगेगी।

स्फूर्ति जगने पर कवि के मन में भविष्य के प्रति आस्था उत्पन्न होती है और वह आगे बढ़ने के गीत गाने लगता है—

बढ़ता जाता हूं मैं / गाता हुआ......

बाधाओं के हट जाने और मार्ग के प्रशस्त हो जाने पर कवि जीवन के विरोधाभासों के प्रति आक्रोश से भर कर यह मानने लगता है कि इन चीड़ों, देवदारों और केसर के मूक फूलों को वाणी देने का काम उसे ही करना है—

इनका गीत / अब / मैंने ही गाना है / सो गाऊंगा / साधिकार गाऊंगा।

आनन्दम की कविताओं में भावों के उतार-चढ़ावों का अपना ही एक संगीत है जो उन्हें पुष्टता प्रदान करता है। परन्तु आनन्दम अपनी कविताओं के शीर्षक चुनने के स्तर पर प्रायः असफल ही रहता है। 'पत्तनी टॉप की चौथी सुबह' से बात शुरु करने वाला आनन्दम का कवि सम्भवतः पहली तीन सुबहों को देर से जागा था, इसी कारण उन सुबहों का वर्णन नहीं दे पाया। इसी प्रकार 'उमंग' शीर्षक कविता को भी वास्तव में 'पत्तनी टॉप की सातवीं सुबह' शीर्षक से अधिक सुचारु रूप से सम्बोधित किया जा सकता था। यह कुछ ऐसी भूलें हैं जिन पर थोड़ा सा ध्यान देने से उन्हें सुधारा जा सकता था। प्रूफ की अशुद्धियों की ओर ध्यान देने में प्रकाशक असफल रहे हैं।